Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

161

जराजेन्द्रविरचिता

॥ ण्डा ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घोषणापत्र

1 [illegible]

2 [illegible]

3 [illegible]

(क) [illegible]

(ख) [illegible]

(ग) [illegible]

1383

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी.....
पु०सं०.....
भारती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राङ्गडा

॥ अभिनवकथासङ्ग्रहः ॥

221

कथाकारः
मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः
हिमाचलप्रदेशविश्वविद्यालयीयसंस्कृतविभागे
आचार्योऽध्यक्षश्च
प्रागभ्यागताचार्यः
बालीद्वीपीय उदयनविश्वविद्यालये
इण्डोनेशिया

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी.....
पु०सं०.....
भारती पुस्तकालय

वैजयन्त प्रकाशन
इलाहाबाद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम संस्करण : जून १९९२ ई०

राङ्गडा : अभिनव कथासंग्रह । साहित्यअकादमी-पुरस्कार-भाजन (इक्षुगन्धा १९८८ ई०) अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र की नवीन कथाकृति । प्रकाशक : वैजयन्त प्रकाशन, ८ बाघम्बरी मार्ग, इलाहाबाद । मुद्रक : शुभचिन्तक प्रेस, ३१३, छोटी वासुकी, दारागंज, इलाहाबाद ।

ग्रन्थ मूल्य : पचास रुपये मात्र ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

RAÑGADA

|| A Collection of New Stories ||

writer

Abhirāja Dr. Rājendra Mishra

Professor & Head of the Sans Deptt

Himachala Pradesh University, Shimala,

Formerly

Visiting Professor in Sanskrit

Universitas Udayana, Denpasar, Bali

INDONESIA

Vaijayanta Prakashana

Allahabad

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

First Edition : June 1992

Rangada : A Collection of new Sanskrit Stories written by **Abhiraja Dr. Rajendra Mishra** The Sahitya Akadami Prize-winner (Ikshugandha : 1988) **Published by** Vaijayanta Prakashan, 8 Baghambari Road, Allahabad **Printed at** Shubhachintak Press, Daraganj, Allahabad.

Price : Rupees Fifty only.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राग्वाक्

इतिहास में पढ़ा है कि भारत का अन्वेषण करते-करते महानाविक कोलम्बस अमेरिका जा पहुँचा था। नियति मनुष्य का लक्ष्य कभी-कभी बदल देती है। कविता और एकाङ्की के रस में पगे हुए मेरा भी कथापुलिन तक आ पहुँचना कुछ वैसा ही साहित्यिक संयोग है। 'दो नावों पर पैर रखने' का मुहावरा कुछ अच्छा अर्थ नहीं देता है। परन्तु मैं दो नावों पर ही पैर रखकर साहित्य-सिन्धु में यात्रा कर रहा हूँ। मेरा एक पैर काव्य-तरणी में तो दूसरा कथा-तरणी में है। परन्तु यह खतरा मोल लेने के बावजूद भी मेरी साहित्य-यात्रा निरापद एवं उत्तरोत्तर विशद चल रही है। मेरे कवि एवं कथाकार में कभी कोई विसंवाद नहीं आया। दोनों शाब्दी-आर्थी व्यञ्जना की तरह एक दूसरे के साथ हैं।

इक्षुगन्धा के अनन्तर 'राङ्कडा' मेरी दूसरी प्रकाशित कथाकृति है। इक्षुगन्धा की कथाओं का परिवेष सीमित था। अधिकांश कथाएँ मेरी अपनी जिजीविषा से कहीं न कहीं जुड़ी थीं अथवा इलाहाबाद की चौहद्दी से सम्बद्ध थीं। कथाओं में उभरे मेरे वैयक्तिक आत्मीय स्पर्श को श्रेष्ठ समीक्षक डॉ० कृष्णलाल (संस्कृतविभागाध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय) ने इक्षुगन्धा की समीक्षा में रेखाङ्कित भी किया था। प्रो० डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी जी को उन कथाओं का काव्योचित प्रवाह एवं अभिव्यक्ति-सौष्ठव पसन्द आया था तो दिवंगता महाविदुषी कमला रत्नम जी को मेरे नारी पात्रों की करुणा छू गई थी। साहित्यअकादमी समीक्षक श्री पाण्डुरंग राव ने इक्षुगन्धा की कथाओं के शिल्प एवं भावाभिव्यक्ति की उन्मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी और विद्वत्प्रवर डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने सागर-संगोष्ठी में मेरे लेखन के काव्य, नाट्य एवं कथा—तीनों पक्षों को वात्सल्यपूर्वक उजागर करते हुए, मुझसे संस्कृत-वाङ्मय के भावी भूरिभव्य की मंगलाशंसा की थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वस्तुतः इन्हीं साधुवादों ने मुझे कथावर्त्म पर चलते रहने के लिये प्रेरित किया। मुझे भी लगने लगा कि मैं अपनी कथाओं में नकेल-विरहित बलीवर्द की तरह झूम-झूम कर चलता हूँ। साहित्य-संरचना में कोई भी बन्धन सहा नहीं जाता, चाहे वह शास्त्रीय हो, चाहे लौकिक! कविता में कवि स्वयं अभिव्यक्त होता है, परन्तु कथा में सम्पूर्ण समाज, राष्ट्र अथवा विश्व! कथा का परिवेष मुझे काव्य के परिवेष से बृहत्तर प्रतीत होता है, जाने क्यों?

राङ्गडा में नौ, अपेक्षाकृत लम्बी कहानियाँ हैं। इनमें से एक[1] भारतमुद्रा द्वैमासिक (त्रिचूर, केरल) में तथा छः त्रैमासिक दूर्वा (म० प्र० संस्कृत अकादमी, भोपाल) में क्रमशः प्रकाशित एवं चर्चित हो चुकी हैं।[2] कुक्की शीर्षक कथा अभी भी दूर्वा की प्रतीहार-भूमि में प्रतीक्षारत है। अधमर्णः सर्वथा अप्रकाशित कथा है।

इन कथाओं के विषय में कोई कैफियत देने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। ये कथाएँ जिन स्रोतों से जनमी हैं, उन्हीं स्रोतों तक पुनः पहुँच रही हैं। पहले ये कथाएँ मृत्तिकामात्र थीं, अब उसी माटी से बनी शालभंजिकाएँ हैं—बस यही अन्तर है। माटी को माटी का परिचय क्या दूँ?

हाँ, शीर्षक के बारे में अवश्य कुछ कहना चाहूँगा। राङ्गडा का अर्थ है—रण्डा, विधवा! कविभाषा (Old Javanese) में दो अक्षरों के बीच में 'ङ्' अथवा 'ण्' के आने पर गकारागम हो जाता है जैसे अङ्क=अङ्गक, ओङ्कार=ओङ्गकार, रण्डा=राङ्गडा। प्रारम्भ में यह शब्द बालीनरेश उदयन (१०८०-११२२ ई०) की विधवा साम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता के लिये प्रयुक्त हुआ। परन्तु कालान्तर में यह प्रेताधीश्वरी महिषासुरमर्दिनी के अर्थ में रूढ़ हो गया। महेन्द्रदत्ता भी बाली के हिन्दू समाज में महिषासुरमर्दिनी का ही रूप मानी जाती है। वह लेयाकों (प्रेत) की स्वामिनी तथा बालियानों (प्रेतोपासकों) की आराध्या है। बाली द्वीप में अनेक राङ्गडा-मन्दिर है जिनमें कुतरी गाँव (राजधानी डेनपसार से ३५ कि० मी० पूर्व) का महिषासुरमर्दिनी-मन्दिर प्रमुख है। वस्तुतः यह स्थान साम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता की चिताभूमि भी है। प्रस्तुत कथा एक प्रकार से साम्राज्ञी की आत्मकथा ही है।

बालीद्वीप में प्रसिद्ध आभिचारिक नृत्यनाटक 'जलोनरंग' इसी ऐतिहासिक कथानक पर आधारित हैं। इसमें वैष्णव एवं कापालिक उपासना-मार्ग का प्रती-

---

१. कुलदीपकः।

२. सिंहसारिः, राङ्गडा, एकचक्रः, महानगरी, पोतविहगौ तथा चञ्चा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कात्मक संघर्ष दिखाया जाता है। परन्तु लोमहर्षक एवं प्राणघाती होने के कारण इसके प्रदर्शन पर शासन ने अब निषेधाज्ञा लगा दी है।

मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग ने महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में इक्षुगन्धा के अध्ययन की व्यवस्था की है—'चतुष्टयी' के माध्यम से। एतदर्थ मैं अध्ययन-मण्डल के संयोजक डा० राधावल्लभ त्रिपाठी एवं इक्षुगन्धा-समीक्षिका डा० इला घोष के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। साहित्यअकादमी द्वारा Modern Sans Literature पर आयोजित कलकत्ता-संगोष्ठी मे डॉ० रत्ना वसु (कलकत्ता यूनिवर्सिटी) ने इक्षुगन्धा-कथाओं की सर्वाङ्गीण समीक्षा की है। उनका भी हृदय से कृतज्ञ हूँ।

चिर० डॉ० योगेश दुबे ने 'इक्षुगन्धा का भाषावैज्ञानिक अध्ययन, शीर्षक लघु शोधनिबन्ध लिखकर कथाओं का विस्तृत गुण-दोष विवेचन किया। मेरी विदुषी शिष्या डॉ० करुणा अग्रवाल ने भी कई कहानियों की सहृदयतापूर्ण मर्मोद्घाटिनी समीक्षा की। ये समस्त आलेख मेरे पास सुरक्षित हैं। इन दोनों सुयोग्य शिष्यों को हार्दिक आशीः देता हूँ। देश के विभिन्न अंचलों में लिखे जा रहे शोधप्रबन्धों में संकीर्ण अथवा पूर्ण रूप से इक्षुगन्धा की समीक्षा की जा रही है। बिना नामोल्लेख किये उन समस्त युवा शोधकर्त्ताओं को आशीः तथा उनके विद्वान् निर्देशकों को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

इक्षुगन्धा तथा राङ्गडा की कथाओं पर टी० वी० सीरियल बनाने की प्रक्रिया में प्रिय मित्र श्रीलक्ष्मीकान्त पाण्डेय जी लगे हैं। मेरे ही असहयोग-वश कार्य में विलम्ब हो रहा हैं। परन्तु यह कार्य अब तीव्र गति से होगा।

दूर्वा में प्रकाशित कहानी 'महानगरी' का सार-संक्षेप जब डा० कमला रत्नम ने 'अनुवाद' पत्रिका (दिल्ली) के सम्पादक को बताया तो वह उसका हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित करने के लिये सन्नद्ध हो उठे। उन्होंने दूर्वा-सम्पादक डॉ० भास्कराचार्य त्रिपाठी से अनुमति माँगी! यह संस्कृतनवलेखन की प्रासंगिकता एवं युगीन भावबोध सिद्धि का ही एक जीवन्त प्रमाण था।

राजश्री प्रोडक्शंस के स्वामी भाई राजकुमार बड़जात्या जी चञ्चा की पटकथा से बेहद प्रभावित हैं और उस पर पूरे तीन घण्टे की फीचर फिल्म बनाने की योजना उनके मन में है। यदि ऐसा हुआ निकट भविष्य में तो संस्कृत नवलेखन की साख निश्चय ही सामान्य जनमानस में भी बढ़ेगी और उसे भी हिन्दी आदि की तरह युगचेतना की अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम माना जायेगा। इन सब कार्यों से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेरा तो कम, परन्तु संस्कृत-समाज का अधिक उपकार होगा।' हाथी घूमे गाउँ-गाउँ जेकर हाथी उही क नाउँ!!'

कुमायूँ विश्वविद्यालय के छात्र इक्षुगन्धा की कथाओं को अपने पाठ्यक्रम में पढ़ रहे हैं। राङ्गडा की कथाएँ भी संस्कृतज्ञ जनता का मनोरंजन करें, पढ़ी जाँय, समीक्षित हों—यही मेरी कामना एवं अपेक्षा है।

सहृदयवशंवद

राजेन्द्र मिश्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथानुक्रमः

कुलदीपकः □ १-६

अधमर्णः □ ७-१६

कुक्की □ १७-२४

चञ्चा □ २५-४२

महानगरी □ ४३-५०

एकचक्रः □ ५१-६१

पोतविहगो □ ६२-८१

सिंहसारिः □ ८२-९०

राङ्गडा □ ९१-१०९

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्फुरत्कलालापविलासकोमला
करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता
कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ।।

—महाकविबाणभट्टः
कादम्बरी, भूमिकाश्लोक / ८

कथासु ये लब्धरसाः कवीनां
ते नानुरज्यन्ति कथान्तरेषु ।
न ग्रन्थिपर्णप्रणयाश्चरन्ति
कस्तूरिकागन्धमृगास्तृणेषु ।।

—महाकविविल्हणः
विक्रमाङ्कदेवचरितम् १/१७

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ राङ्गडा ॥

अभिनव कथासंग्रह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुलदीपकः

हरन ऽ ऽ ऽ । रामदीन ऽ ऽ ऽ । इतस्तावदायाहि ।

स्कूटरयानादवतरन्नेव गृहपतिः गृहसेवकद्वयं क्रमेण आह्वयतिस्म । परन्तु गृहाभ्यन्तरात् न कोऽपि ध्वनिः अश्रूयत न वा द्वयोरपि सेवकयोरेकतरोऽपि बहिरागच्छत् ।

इलाहाबादनगरस्य लूकरगञ्जक्षेत्रे स्थितमिदं महार्घं भवनम् । अस्य गृहपतिः प्रवीनचौधरी प्रयागस्थे उच्चन्यायालये लब्धप्रतिष्ठोऽधिवक्ता सुरुचिसम्पन्नश्च नागरिको वर्तते । प्रयागसंगीतसमितेः कार्यक्रमेषु साहित्यसंगोष्ठीषु च तस्य महत् योगदानं वर्तते । तस्य पत्नी रत्नाऽपि सौम्यस्वभावा करुणहृदया बीएपरीक्षोत्तीर्णा च वर्तते । तयोरेक एव पुत्रः सिन्धुनामा स्थानीये ब्वॉयज हाईस्कूल इत्याख्ये विद्यालये शिक्षां गृह्णाति । भवनस्य बाह्याकृतिरेव स्फुटं भणति चौधरीमहोदयस्य ऐश्वर्यम् । विशाल गृहोद्यान भृशं चकास्ति धारासलिलयंत्रेण विविधैश्च शोभावहैः पुष्पक्षुपैः । क्वचित् कदलीकुञ्जः क्वचित् मल्लिकालता क्वचित् शेफाली क्वचिच्च यूथिका । तोरणमभितो बकुलाशोकवृक्षाः पंक्तिबद्धा वर्तन्ते । राजभवनमिव संलक्ष्यते प्रवीनचौधरीगृहम् ।

रत्नासदृशीं गृहिणीं सम्प्राप्य प्रवीनचौधरी आत्मानं धन्यं मन्यते । परन्तु सर्वेषु सद्गुणेषु सत्स्वपि सुमहान् दोषस्तस्मिन्नेको वर्तते । स नितरां विनिन्दति निर्धनान् । तन्मते सामान्यजातिका जना निश्चप्रचं नृशंसा अपराधपरायणाश्च भवन्ति । फलशाकविक्रेतारः खटिकास्तु मनागपि न रोचन्ते तस्मै । यतो हि ते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वविधमपराधं कुर्वन्ति। चौर्यं क्रौर्यं हत्या लुण्ठनं प्रवञ्चनं ग्रन्थिच्छेदनं भित्तिभेदनं मदिरानिर्माणम् अवैधमद्यविक्रयम् इत्येतान् सर्वानपि अपराधान् एते खटिकादिका एव कुर्वन्तीति वाक्कीलमहोदयस्य भ्रमो वर्तते।

तस्यामेव खटिकवसतौ तस्य पुत्रः कथमपि गच्छेत् इति सर्वथाऽचिन्त्यम् असह्यञ्च प्रवीनचतुर्धुरीणस्य कृते! परन्तु अद्य उच्चन्यायालयात् गृहं प्रतिनिवर्तमानेन तेन दृष्टं यत् तस्य पुत्रः सिन्धुः खटिकवसतेर्निष्क्रम्य त्वरया गृहाभिमुखं समागच्छति। एतद् दृष्ट्वैव सञ्जातरोषोऽसौ गृहमासाद्य सिन्धुमानेतुं सेवकमाह्वयतिस्म।

गृहपतेस्तारस्वर निशम्य द्वावपि सेवकौ वात्यागत्या सझम्पमागतौ पुस्तकालयकक्षे। उभावपि स्वामिनो मुखमुद्रामवलोक्य स्तम्भितौ हतप्रभौ च सञ्जातौ। यथाकथञ्चित् साहसं संहृत्य रामदीनः सविनयं प्रोवाच—हजूर! उष्णमानयानि शीतलं वा!

—भ्राष्ट्रे गच्छतु तवोष्णं शीतलं वा! क्रोशाम्यहं मूढ इव। न कोऽपि शृणोति? कर्णौ बधिरौ सञ्जातौ? क्वासीः?

—स्वामिन्! महानसे आसम्। आज्ञापयतु भवान् किं कर्तुं युज्यते?

—गच्छ सिन्धुमानय। किञ्चित् शान्तस्वरेण प्रवीनोऽभाषत।

—हजूर! भर्तृदारकस्तु इदानीमेव समायाति। किमपराद्धं तेन किमपि? सभयं रामदीनोऽकथयत्।

—रामदीन! यत् कथयामि तत्कुरु। त्वं पुनः न्यायाधीश इव वितण्डां कुरुषे? गच्छ सिन्धुमानय।

स्वामिनिदेशमङ्गीकृत्य रामदीनो गृहाभ्यन्तरं प्रविवेश। किञ्चित्कालानन्तरमेव सिन्धुं पुरस्सरीकृत्य गृहिणी रत्ना सेवकौ च युगपत् समायाताः। पतिं सञ्जातरोषमवलोक्य तं प्रह्वीकर्तुकामा रत्ना सस्नेहमपृच्छत्—किमभूत् भोः? अद्य मनःस्थितिः उच्चावचा समवलोक्यते! किं न्यायालये कोऽपि वादः हस्तात् च्युतो यद्वा केनापि न्यायाधीशेन निर्भर्त्सितोऽसि?

गृहस्वामिन्या व्यङ्ग्यवचनं श्रुत्वा हरनरामदीनौ निरर्गलं हसितुमारेभाते। तत्सर्वं दृष्ट्वैव प्रवीनचौधरी वैलक्ष्यमनुभूय समधिकतरं रोषमुपगतः। तारस्वरेण प्रोवाच—देवि! न्यायालये तु साक्षाद् बृहस्पतिरपि मां जेतुं न शक्नोति। न वा कोऽपि न्यायाधीशो मामवमन्तुं प्रभवति। परन्तु स्वगृहन्यायालये सदैव खलीकृतोऽस्मि। भवादृशीं न्यायाधीश्वरीं सम्प्राप्य कदापि स्वविजयं न प्रेक्षिष्ये इत्यपि जानामि। सम्प्रति भवती क्षणं यावत्तूष्णीमुपगच्छतु।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—मास्टर सिन्धो ! मुहूर्तमितस्तावद् ?

पितुर्वचनं श्रुत्वा क्रोधञ्च तस्य दृष्ट्वा सिन्धुः सभयं जनन्या अञ्चले प्रविविक्षुरिव न समायातः।

रत्ना प्रोवाच—किमभूत् ? किं कृतं मद्दारकेण ? किमर्थमद्य समागतप्राय एव तस्मै कुप्यसि ? चायं गृहाण, जलं पिब। अल्पाहारं तावन्निर्वर्तय। पश्चात् यत्किमपि पृच्छ दारकम्।

त्वं मा भण। प्रवीनों रोषपूर्वकं जगाद तनयं च मातुः क्रोडात् समाचकर्ष पप्रच्छ च मास्टर सिन्धो ! इदानीं ब्रूहि खटिकवसतौ किमर्थं गतवान् आसीः ?

—तात ! तत्र मम सहपाठी सोमधरो निवसति। तस्मात् स्वगणितपुस्तकमादातुं गतवान् अस्मि।

—किमर्थं त्वया स्वपुस्तकं तस्मै दत्तम् ?

—तात ! सोमधरोऽपि स्वपञ्जिकां मह्यं ददाति। इदानीमपि तस्य विज्ञानपञ्जिका मत्पार्श्वे वर्तते। सिन्धुः अकथयत्।

—मूर्ख ! किं त्वं विज्ञानं न जानासि ? किं सोमधरोऽतिकुशाग्रबुद्धिः ?

—अथ किम् ? आवां द्वावपि पठने कुशाग्रबुद्धी। कदाचित् सोमधरः प्रथमं स्थानं प्राप्नोति कदाचिच्चाहम्। परन्तु तात ! सोमधरो मयि अतितरां स्निह्यति। अतिसौम्यः सुशीलश्च वर्तितेऽसौ।

—भवतु। सोमधरस्य पिता किं करोति ?

—तात ! सोमधरस्य पिता ट्राल्यां फलानि शाकांश्च सज्जीकृत्य नगरवीथीषु आहिण्डते। प्रतिद्वारं शाकविक्रयं करोति। सिन्धुः बालसुलभसारल्येन अवोचत्।

—मास्टर सिन्धो ! अथ तव तातः किं करोति ?

— मम तातस्तु उच्चन्यायालये अधिवक्ता वर्तते।

—मार्जारपोतक ! अधिवक्तुः पुत्रस्त्वम्। सामान्यफलविक्रेतुश्च पुत्रः सोमधरः। त्वं चौधरी स च खटिकः। उभयोः किं सामञ्जस्यम् ? किं तव कक्षायाम् उच्चजातिका विद्यार्थिनों न वर्तन्ते ? सोमधर एव तवैकमात्रं मित्रम् ? इत्येवं कथयन्नेव प्रवीनचौधरी बालकस्य दक्षिणकर्णं निर्दयं कुञ्चितवान्। बालकः रोदितुमारेभे। पत्युर्निर्दयव्यवहारं दृष्ट्वा रत्ना भग्नहृदया क्षुब्धा च सञ्जाता। सक्रोधं सा प्रावदत्—साधु साधु ! कीदृशमद्भुतं पितृहृदयं प्राप्तवानसि ? अल्पवयस्कस्यापि दारकस्य सौम्यप्रकृतिं कः [illegible] ? तं [illegible] ? कीदृशमधरोत्तरं दृश्यते जगति ? स खटिक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दारकमपि मेधाविनं स्वमित्रं मन्यते। त्वं पुनस्तस्य कोमलमस्तिष्के जातिभावना-दुर्विषम् उद्वमसि ? धन्योऽसि ! महानसि !

पत्न्याऽधिक्षिप्तः प्रवीनः प्रोवाच—त्वं न जानासि किञ्चित्। नियमय जिह्वाकर्तरिकाम् ! एते खटिका दिवसकाले तु शाकविक्रयं कुर्वन्ति। रात्रौ पुनः मद्यं पीत्वा द्यूतमाचरन्ति। मध्येमार्गं रिक्शायानमवरोध्य यात्रिणां सर्वस्वं लुण्ठन्ति। एते सर्वे स्वभावत एव अपराधिनो भवन्ति। प्रतिदिनमहं न्यायालये एतेषां चरित्रं पश्यामि।

रत्ना ससाहसं प्रोवाच—श्रूयतां तावत्। अपराधास्तु न जातिं कुलं वाऽश्रयन्ति। किं सर्वेऽपि दस्यवः खटिका एव ? किं सर्वेऽपि चम्बलदस्यवः खटिका एव ? न ब्राह्मणाः ? न क्षत्रियाः ? न वैश्याः ? कोऽयं भवतां व्यामोहः ? यदि खटिककुलोत्पन्नोऽपि सोमधरो मेधावी सुशीलः सद्गुणसम्पन्नः किं तर्हि नासौ अभिनन्दनीयः ? कियन्तः चतुर्धुरीणदारकाः कुशाग्रबुद्धयो वर्तन्ते ? मम मातृगृहेऽपि खटिक वर्तन्ते। तत्र तु रामलालखटिको मम पितामहस्य महान् सुहृत् आसीत्। अहमपि तं पितामहं सम्बोधितवती। स तु मम कुटुम्बस्य सुखे दुःखे च नितरां सहभागासीत्।

हः हः हः हः ! उच्चैर्जहास प्रवीनचौधरी, प्रोवाच च सव्यङ्ग्यम्—साधु साधु ! देवि ! इदानीं ज्ञातम्मया सिन्धोः खटिकप्रणयरहस्यम्। मातृगर्भे एव प्राप्तं तेन एतत्सर्वम्।

रत्ना पत्युः मूर्खतां दृष्ट्वा सोद्वेगं सतिरस्कारं तं पश्यन्ती गृहाभ्यन्तरमगच्छत्। सिन्धुरपि नितरां म्लानो दैन्यमुपगतो जननीमनुससार।

एवमेव व्यतीतानि कानिचित् दिनानि। तस्मात् दिनादारभ्यैव रत्ना खिन्ना जाता। पत्युः सङ्कीर्णविचारं निभाल्य धनसम्पत्तिगर्वञ्च विलोक्य सा मनस्येव सन्तप्ताऽभूत् परन्तु शीलसमुदाचारवशात् कदाचित् न विरोधं कृतवती न च कलहम्।

मासप्राये व्यतीते कस्मिंश्चित् शीतदिवसे सिन्धुः विद्यालयात् सान्ध्यकालेऽपि गृहं न प्रत्यागतः। प्रायेण सार्धत्रयवादनकालेऽपराह्णे तस्य बाष्पयानमागच्छतिस्म। परन्तु तस्मिन् दिने चतुर्वादनं यावदपि न प्रत्यावर्तत यानम्। रत्नाऽनिष्टशङ्कोपहतहृदया खिन्ना जाता। न्यायालयात् प्रतिनिवृत्तः प्रवीनोऽपि चिन्तामुपगतः। पत्न्या विकलतां दृष्ट्वा स दूरभाषयन्त्रं योजितवान्। वार्ताक्रमः प्रावर्तत।

—हलो हलो ! हू इज स्पीकिंग ? ब्बॉयज हाईस्कूल ? प्राचार्यमहोदयः। शोभनम्। श्रूयतां तावत्। अयमहं प्रवीनचौधरी उच्चन्यायालयाधिवक्ता ब्रवीमि। मम पुत्रकः सिन्धुः इदानीं यावत् गृहं नागच्छत्। किं विद्यालये कोऽपि महोत्सवो वर्तते ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किमुक्तं भवता ? विद्यालयस्तु त्रिवादने एव विमुक्तः ? सर्वेऽपि छात्रा गताः ? आल राइट ! थैङ्क यू सर ! थैङ्क यू !

—किमुक्तं प्राचार्येण ? रत्ना सोद्वेगं कथितवती ।

—देवि ! अलमुत्ताम्य । इदानीमेव गच्छाम्यहम् । पश्यामि सिन्धुः क्व वर्तते ? त्वं पुनः धैर्यं मा मुञ्च ।

रुदती रत्ना प्रोवाच—भो यदि नाम पुत्रकस्य किञ्चिदनिष्टं सञ्जातं प्राणानहं न धारयिष्यामि । गृहस्वामिनीं विलपन्तीं दृष्ट्वा हरनरामदीनावपि अश्रुविकलौ जातौ ।

परन्तु यावदेव प्रवीनः स्कूटरयानमधिरुह्य बहिर्गन्तुं प्राक्रमत तावदेव दृष्टं तेन यत् कोऽपि मलिनवसनो बालकः सिन्धुं क्रोडे कृत्वा रिक्शायानमधिरोप्य च समायाति । दृष्ट्वैव ज्ञातं प्रवीनेन यदसौ बालकः न कोऽप्यपरः प्रत्युत सोमधर एव भविष्यति ।

सिन्धुं तादृशमवलोक्य सर्वेऽपि पुञ्जीभूताः । बालकः प्रोवाच—पितृव्य ! सोमधरोऽस्मि सिन्धोः सहपाठी । अद्य मार्गे दुर्घटना सञ्जाता । ट्रकयानमेकं सिन्धोर्यानं दृढमाहत्य अपद्रुतम् । यानं परावर्तितम् । बहवः छात्रा क्षतविक्षताः सञ्जाताः । अहं पुनः पदातिरेव आगच्छन्नासम् । सिन्धुं प्रत्यभिज्ञाय सहैवानयामि । अयं पुनः तदारभ्यैव मूर्च्छितो वर्तते । परन्तु न किमप्यत्याहितम् ।

सिन्धुमवतारयन्तु भवन्तः । अहं पुनः पार्श्ववर्तिनं भिषजं डॉक्टरधूलियामहोदयमानयामि । एवमुक्त्वा यावदेव सोमधरो गन्तुमारेभे तावदेव सिन्धुश्चैतन्यमनुभूय जननीं पप्रच्छ जलं च याचितवान् । सर्वेऽपि प्रसन्नाः जाताः । रत्ना तु नवप्रसूता गौरिव वात्सल्यमेदुरा पुत्रसमीपमागतवती । तस्या नयनेऽश्रुभाराक्रान्ते जाते ।

सिन्धुः सोमधरं दृष्ट्वा स्मितं चकार । परन्तु पार्श्वस्थं पितरमवलोक्य पूर्वघटनाञ्च संस्मृत्य अकस्मादेव हतप्रभोऽजायत । प्रवीनचौधरी पुत्रस्य भावनां सम्यग् ज्ञातवान् । महता स्नेहेन वात्सल्येन चासौ सोमधरस्य शीर्षं सारितवान् । सिन्धोर्लुप्तप्रायं स्मितकं पुनर्नवतामुपगतम् । सिन्धौ प्रबुद्धे स्वस्थे च सति प्रोवाच सादरं सोमधरः—पितृव्य ! इदानी गन्तुमनुजानीहि । बहूनि करणीयानि कार्याणि सन्ति । नमस्ते । अम्ब ! नमस्ते !

एवंवादिनं तं निसर्गसौम्यं बालकं प्रस्थानोन्मुखं दृष्ट्वा परिवर्तितनिसर्गः प्रवीनः सप्रणयमवदत—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोमधर! पितृव्यगृहात् अल्पाहारमकृत्वैव यास्यसि? न खलु। एहि तावत्।

सर्वेऽपि सम्मुखीना उपतस्थुः। स्वदुर्मनोवृत्तिं स्मारं स्मारं पश्चात्तापाश्रुक्लिन्ननयनः प्रोवाच प्रवीनः—

वत्स सोमधर! सिन्धुमुखात् त्वद्विषयकं सर्वमपि वृत्तं श्रुतम्मया। अद्य तावदनुभवामि यदन्धकारावृत एवाहमासम्। त्वया कुलदीपकेन सर्वमपि मोहतमो मे विनष्टम्। श्व एव त्वत्कृते सिन्धोश्च कृते द्विचक्रिकायानमानेष्यामि। उभौ सार्धमेव विद्यालयं गमिष्यथः। तवाध्ययनस्य सर्वमपि दायित्वमितः प्रभृति अहमेव निर्वक्ष्यामि। कस्मिंश्चिद् दिने स्वपितरमप्यानय। तस्य कृते शासनसाहाय्यप्रबन्धं विधास्ये। वत्स! सत्यमेव कुलदीपकोऽसि त्वम्। त्वादृशैरेव शीलसौजन्यचरित्रसम्पन्नैश्छात्रै राष्ट्रमस्माकमुन्नेतुं शक्यते। गृहाण किञ्चिदशनजातम्।

इदानीं प्रवीनचौधरीव्यक्तित्वे रत्ना कमपि सहृदयोत्तमं पतिं सिन्धुश्च वात्सल्यकातरं पितरं ददृशतुः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधमर्णः

हस्तिनापुरनरेशस्य शान्तनोर्नयनयोरद्य निद्रा नाऽसीत्। राजप्रासादोपरि मुक्तव्योमाधस्तलेऽधिरत्नशय्यं शयानोऽसौ निर्निमेषदृष्ट्या नक्षत्रमण्डलाभिमुखं पश्यन्नासीत्। तस्य दृष्टिः कदाचिद् ध्रुवनक्षत्रप्रदक्षिणापरं सप्तर्षिमण्डलं, कदाचिच्छरविद्धमृगरूपधारि मृगशीर्षनक्षत्रं चावलोकितवती। कदाचिदसौ कृत्तिकाः दृग्भ्यां पिबन्नासीत्। एवं प्रतीयतेस्म यथा विस्तृते पिठरे केनचित् धवलधवला अगणितमुक्ता विकीर्णाः स्युः।

अकस्मादेव कश्चिद् विशाल उल्कापिण्डश्चुच्युवे सान्द्रज्वालालेखाञ्च समाकर्षन् वायुकोणे विलिल्ये। शान्तनुरात्मानमग्निबाणविद्धमिवान्वभवत्। वेदनाहतोऽसौ चक्रन्द। अक्षिणी प्रमील्यासौ नैकधा शयितुमुपचक्रमे। परन्तु मनोऽवसादस्तस्य तत्प्रयासान् खिलीचकार। वैयर्थ्योपजातशोकोऽसौ नयनयोर्नितरामुन्मीलनमेव निर्णिनाय। परन्त्वेवमाचरितेऽपि दुर्वारवातप्रवाहा विस्फारितनयनयोरस्रं कालुष्यञ्चोपजनयामासुः।

महाराजस्य पूरोः कुलपरम्परायां समुत्पन्नश्चन्द्रवंशी सम्राट् शान्तनुरिदानीं प्रायेण पञ्चाशद्वर्षदेशीय आसीत्। व्यक्तित्वं तस्यातिसमाकर्षकं दिव्याभानुस्यूतञ्चासीत्। तथापि कर्णपाल्योपरि विद्यमानोऽवदातकेशराशिः समासन्नप्रायं वार्द्धक्यं साधु पिशुनयतिस्म। विशालं साम्राज्यं धनधान्यसमृद्धिः प्राज्यं वैभवञ्चेति सर्वस्मिन्नुपपन्नेऽपि जीवनं तस्य वात्याचक्रोद्भ्रान्तमम्बरमिव सर्वथाऽशान्तमासीत्।

मनोगतिरपि कियती विचित्रा? इदानीमेव निषण्णं शरीरे। प्रसह्य बहिष्कृतमपि न निष्क्रामति शरीरगह्वरात्। परन्त्वन्यस्मिन्नेव क्षणेऽनभिधाय किञ्चित्प-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लायते नगरान्नगरं जनपदाज्जनपदं धरित्र्या आकाशं ग्रहादेकस्माद् ग्रहान्तरपिण्डं यावत् ! अद्भुतैव शक्तिरेकादशेन्द्रियस्य ! अद्भुतैव त्वराऽपि तस्य !

शान्तनोरशान्तं चित्तमप्यतर्कितमेवातीतवीथिकासु भृशमाजिहिण्डे। अष्टादशहायनपुराण्यः संस्मृतयस्तं विचित्रे सम्मोहके च कस्मिंश्चित् स्वप्नलोके निन्युः। कायान्तरप्रवेशमिवानुभवतिस्म प्रौढे वयसि वर्तमानो नरपतिः।.....

चतुर्विंशतिवर्षदेशीयः कुमारशान्तनुः प्रतिदिनमिव तस्मिन्नहन्यपि गङ्गापुलिने विचरन्नासीत्। सिद्धसिन्धुशीतलसलिलप्रवाहं संस्पृशन् शीतलमन्दसमीरोऽद्य हृदये तस्य विचित्रमेव किमपि रणरणकं जनयन्नासीत्। एकतश्च निभृतालिननीवृति टिट्टिभयुगलानि स्वैरं विहरन्ति आसन्। यौवनदेहलीविटङ्के तिष्ठन् कुमारशान्तनुः समग्रामेव प्रकृतिं समुद्दीपनपरायणां मन्यमानो मोहपाशसंयमित इव पर्यलक्ष्यत।

तावदेव गंगातटवर्तिशरवणसमुत्थितः कश्चिन्मसृणः सनत्कारध्वनिः कुमारस्य चित्तैकाग्रतां बभञ्ज। स नद्याश्चलवीचीनां पतनोत्पतनानि पश्यन्नासीत्। सनत्कारध्वनिं शृण्वत एव तस्य वन्यजीवागमनभ्रमः समुत्पेदे। परन्तु किमिदम् ?

न खलु कश्चिद् वन्यजीवः। कांचित्सुकुमारा युवतिरियमासीत्। सकृत्पुनः कुमारश्शान्तनुर्मृगमरीचिकाभ्रममिव स्वान्ते व्यतानीत्। अप्रत्ययकातरोऽसौ करतलाभ्यां सकृदक्षिणी सारितवान्। रमणी तदभिमुखमेवापतन्ती समदृश्यत। एतावत्तु कुमारो विशश्वास यन्नासौ स्वप्नदर्शी। तथापि किंकरणीयतोत्कण्ठाऽऽशङ्कामावग्रस्ता तद्बुद्धिः किञ्चिदपि निर्णेतुं न चक्षमे। यावदसौ प्रत्यग्रप्रबोधमेति तावदेव लावण्यपूरप्रवाहोऽसौ तत्समीपमाजगाम। अमन्दमन्दाक्षसङ्कुचिताऽसौ युवतिस्ताटस्थ्यं नाटयन्ती मौनमवतस्थे।

—देवि ! काऽसि त्वम् ? एकान्तविजनेऽस्मिन् किं कुरुषे ? श्वापदानां भयमपि नास्ति ? पप्रच्छ शान्तनुः।

निर्वागवतस्थे रमणी। चरणनखैरसौ धरणीमृदां लिखितुमारेभे। असंस्तुतमपि प्रगाढानुरक्तम्मनः कुमारस्य रमण्या इमां निर्व्याजमुग्धतां दशं दशं प्रह्वीभूतम्। स्वरे किञ्चिदधिकमेव माधुर्यं मेलयन्नसौ पुनरवोचत्—

न किञ्चिदाख्यातं त्वया ! मत्तो बिभेषि किम् ? भवतु, मा भैषीः। अहमस्मि शान्तनुर्युवराजो हस्तिनापुरस्य। नारीणां सम्माननैवास्माकं कुलपरम्परा। अतो न भेतव्यम्।

—जानामि कुमार ! सम्यक्परिचयं तव जानामि। रमणी समुदाजहार।

—साधु साधु ! मुखमुद्घाटितं त्वया। एतदुक्तं भवत्यनेन यन्मां सम्यग् विज्ञायैव समागतास्यत्र त्वम् ! त्वरितं ब्रूहि भद्रे ! मया तव किं प्रयोजनं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साधनीयम् ? त्वत्साहाय्यमनुष्ठाय सौभाग्यशालिनमात्मानमवगमिष्यामि ।

—यदि नाम काचिद्रमणी जनशून्योद्देशे आत्मप्रत्ययेनैव कमपि सुपरिचितं लडहमभ्युपैति तदागमनप्रयोजनं कुमारः किं परमार्थतो न विजानाति ? बभाषे रमणी यथाकथञ्चित् ।

रमण्या वाचोयुक्तिं शृण्वत एव कुमारशान्तनोरन्तराले काचिदुद्दामवात्येव समुदतिष्ठत् । तद्धैर्यमवमितम् । आसीच्च तच्चेतसि—हन्त ! देवाङ्गनासदृक्षोयमनिन्द्यरूपराशिः ! केयं भवितुं शक्नोति ? अस्या रमण्याः स्वरमाधुर्यं, लज्जावगुण्ठनं पवित्राभिसारौत्कण्ठ्यञ्चेति त्रितयमप्यनुपमं प्रतिभाति । परन्तु का नु खल्वियम् ?

—देवि ! न दत्तस्त्वयाऽऽत्मपरिचयः । शान्तनुर्जगाद ।

—कुमार ! परिचयो मम किन्तवान्तराले नोट्टङ्कितः ? मम पवित्रप्रणय एव परिचयो मम । सम्मानयाम्यहं त्वत्सद्गुणान् कुमार ! सच्चारित्र्यञ्च ते समाद्रिये । तवानुगं तत्सर्वमेवात्मजीवनसम्बलं विधातुं महताऽभिलाषेण त्वदन्तिकमुपागतास्मि । प्रागल्भ्यमिव नाटयन्ती रमणी निष्प्रत्यवायमवादीत् ।

साम्प्रतं न स्थिरीभवितुं शशाक कुमारः शान्तनुः । विचित्रमोहपाशनिगडित इवासौ प्रसह्याग्रेससार रमण्याश्च हस्तं स्वहस्तेन गृहीत्वा श्लक्ष्णया गिरा निभृतं जगाद ।

—देवि ! एतावदेव त्वत्परिचयसूत्रं पर्याप्तम् । त्रिदशतटिनीं भगवतीं भागीरथीमेव प्रमाणीकृत्य, अस्मिन्नेव क्षणेऽहं गान्धर्वेण विधिना त्वत्पाणिग्रहणं करोमि । अद्यप्रभृति शान्तनोः सौभाग्यलक्ष्मीस्त्वं जाताऽसि । तदेहि मया सार्धं राजमन्दिरम् !

—राजन् ! भवत्सौभाग्यलक्ष्मीरहं भवेयमिति पूर्णतामुपयातो मे चिरकाङ्क्षितः स्वप्नः । प्राणपणेनाहं भवन्तं सुखयितुं प्रयत्नं विधास्ये । परन्तु भवताऽपि ममैकः प्रस्तावोऽङ्गीकरणीयस्तिष्ठति । काममसौ प्रस्तावो भवत्कृतेऽप्रिय एव स्यात् ।

—कीऽसौ त्वत्प्रस्तावो यन्ममाप्युद्वेगं जनयेत् ? भद्रे ! स्फुटं ब्रूहि ।

—युवराज ! या काऽपि सन्ततिस्त्वत्तः प्राप्ता भविष्यति तामहं भगवत्यै भागीरथ्यायेव समर्पयिष्यामि ।

विलक्षणमसमञ्जसञ्चेमं प्रस्तावं श्रुत्वैव चकम्पे शान्तनुः । हतप्रभोऽसौ सञ्जातः। एकतस्तु रमण्याः कुसुमसुकुमारं व्यक्तित्वम् अपरतश्च तस्या नृशंसः संकल्पः ! कति-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पयक्षणेभ्यः प्रागेव तां रमणीमभिलक्ष्य सृष्टस्तस्य कल्पनासौधः सहसा विशीर्यन्निव समलक्ष्यत। परन्तु रूपयौवनवीथिकास्वाहिण्डमानं शान्तनोः पिपासु मानसं प्रथमे वयसि सन्ततिसौख्यसार्थक्यमनुभवितुं न पारयामास। स तूष्णीमास्थायावतस्थे।

वासन्तीसुषमोपमां प्रियतमामवाप्य शान्तनोर्जीवनस्य प्रथमाऽऽकाङ्क्षा तु पूर्णतामुपययौ। परन्तु वसन्तोद्दीपनादप्यधिकं तमपिपीडन्निदाघसन्तापः। सप्त वर्षाणि व्यतीतानि सप्तक्षणपरिमितानि। शान्तनुप्रिया प्रतिवर्षं पुत्रमेकमजीजनद् गङ्गायै च तं वंशाङ्कुरं समर्पयामास। प्रियतमासम्मोहकरूपमोहाबद्धं सदाशयं शान्तनुहृदयं सम्प्रति पितृत्वसार्थकतां साधु जज्ञौ। पुत्रस्यास्फुटालापं श्रोतुं पर्याकुलौ तत्कर्णौ बभूवतुरिदानीम्। पत्न्या नृशंसमानवोचितं व्यवहाररहस्यमवगन्तुं यावदसौ प्रयततेस्म तावदेव वर्धतेस्म तन्मनोयन्त्रणा। तथापि पत्नीवियोगसाध्वसकातरश्शान्तनुःर्हृदयं पाषाणीकृत्य सप्तानामपि स्वपुत्राणां विनाशं पश्यन्नासीत्।

घटनाया अष्टम्यप्यावृत्तिर्नेदिष्ठा समदृश्यत। पत्नी नवजातं शिशुं श्वेतवस्त्रैरवष्टभ्य निशीथस्य गहनेऽन्धकारे गङ्गातटाभिमुखीभूय प्रतस्थे। शान्तनुरिदानीमपि निर्निमेषनयनाभ्यां पापकर्मेदं पश्यन् स्थितः। परन्तु वात्सल्यममत्वोद्रेकवशादसौ विक्षिप्त इव समजायत। कर्त्तव्यबोध इव समुदियाय तद्बुद्धौ। काऽप्यदृष्टशक्तिस्तमुत्प्रेरयामास पापशमनार्थम्—उत्तिष्ठ शान्तनो! वारय सन्ततिम्। आत्मा वै जायते पुत्रः। त्वमेव जातोऽसि पुत्ररूपेण! किमात्मानं निहनिष्यसि? आत्मघातोऽयं शान्तनो! अलमात्मघातेन। रुन्ध्यसाम्प्रतकारिणीं डाकिनीमिमाम्.....। समुत्थितश्शान्तनुस्तस्मिन्नेव क्षणे प्रतस्थे च द्रुतपदैर्गङ्गातटाभिमुखम्।

सप्तवर्षानन्तरं दम्पती तस्मिन्नेव स्थाने स्थितावास्तां यत्र तयोः प्रथमसमागमो जघटे। तदाऽऽसीदुभयोर्मध्ये केवलं परस्परभोगाकाङ्क्षा, परन्त्वद्य.....अद्यासीत्तयोरन्तराले भोगाकाङ्क्षाप्रतिफलकल्पः कश्चिच्छिशुरपि।

अकस्मादेव शान्तनुर्जग्राह हस्तं भागीरथीप्रवाहाभिमुखमुपसरन्त्याः पत्न्या जगर्ज च रुक्षस्वरेण—

> तिष्ठ। बहु स्वैरमाचरितं त्वया। सम्प्रत्यवसितं ते पापनाटकम्। मन्नयनसमक्षमेवानर्थमिमं घटयितुं न पारयसि। जन्मदात्री जनन्यसि पिशाची वा? प्रागपि त्वयाऽऽत्मपरिचयो न दत्तः। ब्रूहि, काऽसि त्वम्? आत्मजातानेव शिशून् कस्मान्निहंसि?

रमणी न किञ्चिदुवाच। निश्चलभावेनैव सर्वं शान्तनूदितं शुश्राव। वस्त्राश्लिष्टं शिशुमसौ वक्षसा लगयतिस्म प्रोवाच च—राजन्! सम्यग् ज्ञातम्मया यदवसरोऽयमावयोर्मध्ये निश्चप्रमागन्ता। साम्प्रतं यावद्यत्किञ्चिद् संवृत्तं तदप्यनेनैव प्रकारेण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घटनीयमासीत् । राजन् ! नाहं कालातिपातं सोढुमीहे । तस्माद्धि संक्षेपेणैव सर्वमाख्याय भवतः पृथग्भविष्यामि

मत्परिचयजिज्ञासुर्भवान् ? परिचयमेव प्रस्तौमि । अहमस्मि गङ्गा राजन् ! देवनदी गङ्गा ! ब्रह्मर्षिवसिष्ठाभिशप्तैरष्टवसुभिः स्वोद्धारार्थं जन्मदात्रीत्वभारं निर्वोढुं भृशमभ्यर्थिताऽहम् । तदेव महनीयं देवकार्यं सम्पादयितुकामाऽहं भवदर्धाङ्गिनीभूय राजमन्दिरे चिरं सुखं न्यवसम् । अष्टमोऽयं भवदात्मज उपरिचरनामाऽष्टमो वसुः । परन्त्वलमतिमात्रं सन्तप्य राजर्षे ! नाहमेनं भवदन्वयदीपमधिधारं क्षेप्स्यामि । आत्मना सार्धमेवैनं देवलोकं नयामि । तत्रैवायं क्षत्रियोचितां शिक्षामायुधानामवाप्स्यति । यदाऽयं युवको भविष्यति भवते स्वयमेवाहं समर्पयिष्यामि·····अत्रैव स्वपुलिनोद्देशे । तदनुजानीहि मां स्वर्गमनाय !

भागीरथ्याः शान्तजलप्रवाहे रोधःखण्डमेकं सचण्डध्वनि प्रचस्खाल । हतप्रभश्चकितचकितश्शान्तनुस्तिष्ठन्नासीत् । नवजातशिशुना सार्धमेव गङ्गा स्वधाराजले विलीनाऽऽसीत् । तटं यावत्समागता उल्लोलजललहर्यः पुनर्नीरवतां प्रपेदिरे । शान्तनुरश्रुपूरितनेत्राभ्यां सरणिं मार्गयमाणः शनैः शनैः राजभवनाभिमुखं प्रतिनिवृत्तः ।

प्रतिदिनमेवाधिसान्ध्यवेलं गङ्गारोधसि निषण्णो हस्तिनापुरनरेशो भागीरथीतरङ्गेषु पत्न्याः पुत्रस्य च प्रतिच्छविं निपुणं निरीक्षतेस्म । इदमासीत्तस्य दैनन्दिनं कार्यम् । अमात्या नरपतेरन्तर्व्यथां सुष्ठु जानन्तिस्म परन्तु न कोऽपि तं सान्त्वयितुं शशाक ।

दिनेभ्यो दिनानि वर्षेभ्यश्च वर्षाणि व्यतीतानि । द्वात्रिंशद्वर्षदेशीयश्शान्तनुरिदानीं पञ्चाशद्वर्षदेशीयस्सञ्जातः । ब्रह्मचर्येण तेजोदीप्तं तस्य व्यक्तित्वमधुनाऽपि तस्य स्थिरं यौवनं प्रमाणयतिस्म ।

तावदेव समागतोऽसौ सुवर्णावसरो यं प्रतीक्षतेस्म शान्तनुरष्टादशवर्षेभ्यः । कस्मिंश्चिद्दिने शिलाखण्डमेकमधिरुह्य गाङ्गीं वीचिमालां शान्तनुर्निरीक्षमाण एवासीत् । सहसैव तावद् देवी गङ्गा पुत्रस्य सव्येतरकरं गृहीत्वा तत्पार्श्वे समागत्य स्थिता । विस्मितो नरपतिरेतावदपि नावजगाम यद् देवी जाह्नवी कदा कथं केन पथा च समाययौ ! अकस्मादेव चिरसंस्तुतः कश्चिन् मसृणमधुरः कोमलकण्ठस्वरोऽश्रूयत—

राजन् ! सोऽयं देवव्रतस्तवात्मजः । गृहाणैनम् । वत्स ! प्रणम स्वपितृचरणं महाराजं शान्तनुम् !

हर्षविह्वलो नरपतिः सद्योऽक्षिलक्ष्यीकृतं युवानं पुत्रं कवाटविस्तीर्णेन वक्षसा भृशं शिश्लेष । अश्रुपर्याकुलं जातं तन्नयनयुगलम् । देवव्रतोऽपि पितृपरिष्वङ्गात्प्रागेव तं सविनयं प्रणनाम । गङ्गा प्रोवाच—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजन् ! समुपपन्नं मम कर्तव्यम् । अनेन पुत्रेण भवान् यशस्वी भूयादिति-मात्रमहं कामये । इच्छामृत्युरयं माणवकः । वरोऽयमस्मै देवैस्समुपायनी-कृतः । समधिगताऽस्त्रविद्याऽनेन भगवतो जामदग्न्यात् । अयं पृथिव्याः सर्वश्रेष्ठो धनुर्धरो ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो मनस्वी महिष्ठश्च भागवतो भविष्यति । चन्द्रवंशकीर्तिर्भविताऽभयाऽनेन शान्तनवेन ।

शान्तनुः किञ्चिदपरमपि शृणुयात्तत्पूर्वमेव देवी गङ्गा न जाने कुत्र शनकै-रन्तर्हिता ! अष्टादशवर्षदेशीयं सुदर्शनं कुमारं देवव्रतं सहायीकृत्य नरपतिः राज-मन्दिराभिमुखं चचाल । प्रारभत तज्जीवने कश्चिन्नूतनोऽध्यायः । कुमारदेवव्रतस्या-भिनन्दनमहोत्सवे हस्तिनापुरवासिनो जना मासान् यावदानन्दमङ्गलसम्भारं समा-म्नातवन्तः । शनैः शनैः सर्वमपि नैमर्गिकं जातम् । कुमारस्य विनयाधिक्येन पितृ-भक्त्या च शान्तनोः प्रियावियोगजोऽवसाद उत्तरोत्तरं चिक्षाय ।

एवमधिशय्यं शयानस्य दविष्ठातीतस्मरणपरायणस्य शान्तनोर्विचाराः सहसैव मध्येमार्गं विच्छिन्नाः । चैतन्यमागतं शरीरे । निखिलमपि वपुः श्रमबिन्दुनिचितमा-सीत् । साम्प्रतमासीदेवं चेतसि तस्य यथा नु दशभिरेव क्षणैः व्यायतजीवनस्य षड्विंशतिवर्षाण्यसौ सम्यग् जिजीव । मासैर्वर्षैर्वा जीवनयापनं दीर्घदीर्घतरं काल-खण्डमपेक्षते । किन्त्वनुभूतिव्याजेन तु हायनानां शतमपि एकस्मिन्नेव क्षणे व्यत्येतुं शक्यते ।

पिपासा बबृंह । पल्यङ्कशयितश्शान्तनुर्व्यतीतजीवनघटनाक्रमस्मरणे निखिला-मेव शक्तिं क्षपयामासेति प्रतिभातिस्म । पात्रनिहितं सुवासितं जलमसौ गटत्कारैरपिवत् पार्श्वं परिवर्त्य च पुनश्शिश्ये ।

परन्तु कथमसौ निर्विघ्नं शयीत ? अतीतस्मृतिमुक्तं मनस्सम्प्रति वर्तमान-घटनाक्रमे संलग्नमासीत् । ह्यस्तनमेव वृत्तं शान्तनुः स्मृतिपथमानयति ।

प्रजाजनानां कुशलक्षेमपरिज्ञानार्थं कतिपयविश्वस्तानुयात्रिकैस्सार्धं हस्तिनापुर-नरेशो नगराद् बहिर्निर्ययौ । अनेकान् जनपदानसौ पर्यटत् । सायन्तने काले वितानस्त-स्योपकलिन्दजाकूलं सुरम्ये प्रकृत्युत्सङ्गेऽनुचरैर्व्यवस्थापितः । शान्तनोर्गङ्गावियुक्तम्मनो विजनोद्देशेऽस्मिन् समभ्यधिकं रेमे । सम्प्रति नदी तज्जीवनस्य काचिद् विचित्रैव जिजीविषासम्पत्तिर्जाताऽऽसीत् ।

समागता प्रभातवेला । कान्तारमयूरकेका शान्तनुं प्रबोधितवती । अवसित-निद्रोऽसौ समुत्थितः । नित्यकर्माणि यथायथं निर्वर्त्य च यमुनातटाभिमुखं पर्यटितु-कामः प्रययौ । काचिदनिन्द्यसुन्दरी युवतिरेकाकिन्येव मध्येकलिन्दजासालिलं तरणी-मध्यास्त । हस्तयोस्तस्या नौकादण्ड आसीत् । वयसा वर्णेन च श्यामाऽसौ साक्षात्क-लिन्दजासहोदर्येव प्रतिभातिस्म ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराजस्य दिव्यव्यक्तित्वं समवलोक्यैव सा रमणी लज्जया सञ्चुकोच आजानुसमुत्थान्यधोवस्त्राणि च समुद्घाट्य ग्रन्थिमधोऽधस्सारयामास। ईषच्छ्यामो वर्णः जम्बूफलसदृशे पृथुलपृथुले कज्जलाभनयने प्रावृण्नदीप्रवाहकल्पं समुच्छलद्यौवनं तदुपरि च स्त्रियोचितत्रपासङ्कोचावरणम्!

तां ग्रामटिकाकन्यां दृष्ट्वैव शान्तनोर्मनः संस्कारार्जितं नियन्त्रणमचुच्युवत्। न खल्वसौ स्वराजत्वगरिमाणं चिन्तयामास न वाऽवपतिष्णु वयः। केवलमसौ विस्फारितनेत्राभ्यां तां धीवरकन्यकां पश्यन् स्थितः। युवती राज्ञो मनोभावं सम्यगवगतवती सप्रयत्नञ्च स्वप्रगल्भवेषभूषां संयन्तुमुचक्रमे।

—भद्रे! हस्तिनापुरनरेशोऽहमस्मि शान्तनुः। न भेतव्यम्। प्रजाजनस्य योगक्षेमवृतं परिज्ञातुमेव समागतोऽस्मि क्षेत्रेऽस्मिन्। किन्नामासि त्वम्? शान्तनुस्साधिकारमथ च विनतगिराऽपृच्छत्।

—अहमस्मि सत्यवती ···लज्जामिश्रितं स्मितकं विधाय युवती जगाद।

—इयल्ललितमभिधानम्? किन्तव तातपाद एव संज्ञामिमां चकार?

—न खलु। साधारणो जनस्तातपादो मम। नासौ कृतविद्यः। योजनगन्धेति तेनाऽहं कृताभिधाना। यतो हि मध्येमत्स्यनिकरं नितरां निवसन्त्या मम संहननमपि मत्स्यगन्धमेव जातम्। एवं ब्रुवाणैव सा रमणी उत्तरीयाञ्चलं मुखे निधाय निजाट्टहासमवरोद्धुमियेष।

तस्याः प्रगल्भवनितायाः स्पष्टवाक्त्वं प्रत्यक्षमवलोक्य प्रह्लन्नोऽभूच्छान्तनुः। स्वयमप्यसौ स्मेरमुखस्सञ्जातः। युवजनोचितोत्साहेन संवर्धितोऽसौ पुनः पप्रच्छ—भवतु। प्राग् योजनगन्धाऽऽसीस्त्वम्। पश्चात्सत्यवती कथं जाता?

—संज्ञेयं मह्यं प्रत्ता महर्षिपराशरेण। वाक्यमिदं कथयन्ती रमण्यसौ सागरजलराशिरिव गम्भीरप्रकृतिर्जाता।

—भद्रे! सुलक्षणा प्रतीयसे त्वम्। तरणीमपहाय किम्मामके राजभवने ससुखं विवत्ससि? चरमं प्रस्तावं हस्तिनापुरेश्वरः प्रारम्भ एव व्यानञ्ज।

—महाराज! पित्रधीनं मम जीवितम्। तदनुमतिं विना देवराजस्य वैजयन्तप्रासादेऽपि वस्तुं न शक्नोमि। तमेवानुनयतु भवान्। सत्यवती स्वारस्यं व्याजेन प्रकटयन्ती सुस्पष्टमुदाजहार। प्रसङ्गोऽयमत्रैव समाप्तः।

मध्यवर्ति दिवसद्वयं शान्तनुजीवने वात्याचक्रमिवायातं यातञ्च। स्वान्तर्व्यथां नरपतिरन्तरङ्गराजपुरुषेभ्यो निवेदितवान्। ते च राजप्रस्तावमिमं सत्यवतीजनकं प्रति सानुरोधं प्रकटयाञ्चक्रुः। परन्त्वसौ राज्ञा सार्धं कन्यायाः पाणिग्रहण-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मस्मादेव कारणान्नाङ्गीचकार यतो हि राजमन्दिरे सत्यवत्याः किञ्चिदपि भविष्यं सुरक्षितं संरक्षितञ्च न पर्यलक्ष्यत ।

गङ्गापुत्रो युवराजो देवव्रत एव हस्तिनापुरस्योत्तराधिकारमानर्हेति रहस्यमिदं निखिलमपि भूतलं सुष्ठु जज्ञौ । अनेन परमार्थसत्येन परिचितः सत्यवत्याः पिता वाञ्छन्नपि व्यवहारवैयर्थ्यं प्रपेदे । किं कुर्यादसौ वराकः ? भौगैश्वर्यनिमित्तमेव कन्या वार्द्धक्योन्मुखस्य भूपतेरन्तःपुरं प्रविशेदिति कथमपि नाभीष्टमासीत्तस्य ।

निराशां कुण्ठिताञ्च मनोवृत्तिं संगृह्य शान्तनुर्हस्तिनापुरं प्रत्याजगाम । एकतश्च यौवनदेहलीपीठमधिरूढोऽष्टादशवर्षदेशीयः पुत्रः कुमारदेवव्रतोऽपरतश्च गङ्गावियोगजं बद्धमूलं हृदयाकाशरिक्ततत्वम् ! को नु खलु शान्तनोरन्तर्द्वन्द्वमिदमवगन्तुं शशाक ? व्यतीते दिनद्वये न तेन किञ्चिद्भुक्तं पीतं वा । सत्यवत्येव सम्प्रति तत्कृतेऽपरा गङ्गा प्रतिभातिस्म । परन्तु गङ्गेयं तज्जीवनमरुवणे कथमानीयेत ?

विचाराणां प्रवाहः कदा कथं वा शैथिल्यमवापेति शान्तनुरपि न बुबुधे । द्वितीयप्रहरे प्रविष्टाऽऽसीन्निशीथिनी । प्रायेणावलम्बे सप्तर्षिमण्डलं प्रतीचीनेऽर्धाकाशे । सुष्वाप गभीरनिद्रायां शान्तनुः ।

कुमारो देवव्रतोऽपि कतिपयदिवसेभ्यःप्रभृति पितुर्वैक्लव्यं पश्यन्नासीत् । पप्रच्छ चासौ नैकधा राजवैद्यं पितुः स्वास्थ्यमधिकृत्य । परन्तु सङ्कोचवशान्न कोऽपि कुमारं विदितवेदितव्यं कृतवान् । का कथा तावद्राजवैद्यस्य ? कुमारोऽस्माद्रहस्यादेव समाधानमवाप्तुं प्रायतत । पितृचरणैःसार्धं गतवद्भिस्सेवकैः सह कुमारोऽममन्त्रत । तया मन्त्रणयैव सर्वं रहस्यं करबदरनिभं सुस्पष्टं जातम् । तानेव राजसेवकान् सहायीकृत्य कुमारो देवव्रतः सत्यवत्या गृहमाससाद ।

सत्यवतीमवलोक्य कुमारो देवव्रतस्तां सश्रद्धं प्रणनाम सविनयञ्चाभ्यार्थयत तज्जनकम्—

> भद्र ! मातृवद्वन्दनीयां भावत्कीं कन्यां स्वपितृसहधर्मचरणायाहं याचितुं स्वयमेवोपनतोऽस्मि । अहमस्मि शान्तनवो गाङ्गेयो देवव्रतः । मन्ये, न मे याच्ञां खलीकरिष्यति भवान् !

—कुमार ! कथम्मां ह्रेपयसि ? को नु खलु पिता स्वकन्यकां पट्टमहिषीपदमधिरोहयितुं नैषिष्यति ? परन्तु राजमहिषीपदप्राप्तिरेव वधूसौभाग्यस्य पराकाष्ठा न भवति युवराज ! धीवरो जगाद सविनयम् ।

—किम्पुनर्वधूसौभाग्यस्य स्थेष्ठं गौरवम् ? भद्र ! भणतु भवानेव । कुमारः सादरं प्रोवाच ।

—राजमातृत्वमेव तन्महिष्ठं सौभाग्यम् । धीवरोऽवदत् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—भद्र ! भवतः सदिच्छेयं पूर्णतामुपयास्यति । भवद्दौहित्र एव भविष्यति हस्तिनापुराधिपतिः । वचनमिदं तुभ्यं प्रददे । कुमारो देवव्रतः सधैर्यमवादीत् ।

—धन्योऽसि, सर्वथा धन्योऽसि कुमार । महानसि । गङ्गात्मजस्य कृते एतादृग्वचनदानं न कठिनं कर्म, परन्तु.....

— अलं सङ्कोचेन भद्र ! स्वैरं भण स्वाभिमन्त्रितम् । तत्कथय यदभिधित्ससि । अलमात्मानमवरोध्य । प्रेरयमाणस्तं कुमारोऽवदत् ।

—परन्तु भवत्पुत्रैर्यदि मम दौहित्रो नाशितो राजसिंहासनाच्च्यावितो वा .... तर्हि....तर्हि किं भविष्यति युवराज ! गहना हि कालगतिः । भवत्पुत्रा भवादृशा एव पितरि श्रद्दधानाः स्युरित्यपि न वक्तुं शक्यते । यथाकथञ्चिदपूपुरत्स्ववाचिकं धीवरः ।

—युक्तियुक्तमुक्तं भवता । को नु खलु विश्वासो मानवमनोवृत्तेः ? अश्वत्थपत्रमिव चञ्चलं मनः । कोऽपि पिता स्वपुत्रचारित्र्यं प्रमाणयितुं न शक्नोति भद्र ! पूर्वजन्मार्जितसंस्कारानुप्राणितो भवति मानवनिसर्गः ।

—क्षन्तव्योऽस्मि कुमार ! वात्सल्यमेव मां प्रेरयति, न पुनः स्वार्थलोभः कश्चित् । भवन्तं सद्गुणविवेकचिन्तामणिं मत्वैव धार्ष्ट्यमिदमनुष्ठितं मया । क्षुद्रेण मुखेन गरीयसीं वाणीमभिदधानोऽहं सत्यमेव क्षन्तव्योऽस्मि । धीवरो निजगाद सदैन्यम् ।

—अलमलमात्मानं लघूकृत्य भद्र ! सत्यमुक्तं त्वया । जनकोचितमुक्तं त्वया । तदहमपि तुभ्यमपूर्वश्रुतं वाग्दानं प्रददे । भद्र धीवर ! सूर्यचन्द्रौ द्यावापृथिव्यौ दिगन्तान् चराचरं जगच्च साक्षीकृत्य सोऽहं गङ्गापुत्रो देवव्रतोऽद्य मध्येजनसमवायमिमां भीष्मां प्रतिज्ञां निवहामि यदितः प्रभृत्याजीवनमखण्डब्रह्मचर्यव्रतं मे भविष्यति ।..... .....

अविद्यमाने वेणुदण्डे वेणुरपि नाधमिष्यति । पितृदत्तमिदं मानवशरीरं पितृजीवनादधिकं महनीयं मूल्यवन्नास्ति । देवप्रसादसार्थक्यं तद्वितरण एव समाहितम् । पितुः परितोषाय प्राणानप्युत्सृष्टुं न मे सङ्कोचलेशः । का कथा पुनः सांसारिकसुखोपभोगपरित्यागस्य ?.....

भद्र ! सम्प्रति भवान् ममाम्बां सत्यवतीं हस्तिनापुरं प्रतिष्ठापयितुं मङ्गलसम्भारान् निर्वर्तयतु । भवदनुमतोऽहं त्वरितमेव जनन्या सह प्रस्थातुमीहे ।

पौरन्दरी दिग्यावत्कुसुम्भारुणा न जाता तावदेव राजप्रासादेषु मङ्गलवाद्यध्वनिरुदचरत् । वैतालिका वन्दिजनाश्च राजप्रशस्तिं बिरुदावलीञ्चावीवचन्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गतागतैरन्तःपुरसेवकानां हेलाविलासोपक्रमैः कञ्चुकिनां नर्तनगायनैश्च वारमुख्यानां राजभवनमान्दोलितमिव पर्यलक्ष्यत ।

कलरवेणानेन प्रोन्मीलिते नयनेऽवसितस्वापस्य शान्तनोः । किमिदम् ? स्वप्नोऽयमस्ति सत्यं वा ? श्रुतिकुहरानुभूतिं महाराजः पौनःपुन्येन प्रत्यक्षप्रमाणैः सत्यापयामास। परन्तु नासीत्तत्र शङ्कालेशावकाशः । अभूच्च तस्य मनसि—हन्त, किमिदम् ? मदौदासीन्यवशादखिलमेव राजभवनं द्वाभ्यां दिवसाभ्यां निर्ह्लादं, निष्प्रभं निष्प्राणञ्चासीत् । तर्हि कुतोऽयं प्राभातिकमङ्गलाचारः ?

एवमादि चिन्तयत्येव विस्मयविस्फारितनयने चिन्ताततिवितानपरे महाराजे शान्तनौ द्रुतपदैर्धावमाना सेविका राजानं समासाद्य प्रोवाच च सोच्छ्वासम्—

> विजयतां विजयतां भर्ता ! वर्धतां महाराजः । स्वामिन् ! अश्वारोही कुमारभृत्यो ब्रह्मवेलायामेव मङ्गलोदन्तमानीतवान् । कुमारो देवव्रतः पट्टमहिषीं सत्यवतीमग्रेसरीकृत्य यथाशीघ्रमेव राजधानीमासादयति । वयमपि राजमहिष्याः स्वागताभिनन्दनकौतुके व्यापृताः । श्रुत्वा देवः प्रमाणम् ।

एतत्सर्वं समाकर्ण्यैव श्रद्धावात्सल्याभ्यां जडीभूतो महाराजश्शान्तनुः । मङ्गलवृत्तनिवेदयित्र्यै दास्यै किञ्चद्दातुमपि विसस्मार नरपतिः । शून्याकाशे देव्या गङ्गायाः प्रतिच्छविमसौ ददर्श । निरुद्धौष्ठपुटात्तस्य केवलमव्यक्तध्वनिः कश्चित्प्रस्फुटोऽभूत्—

> देवि त्रिपथगे ! मह्यं पिता कश्चित्समुपायनीकृतस्त्वया, न पुनः पुत्रः ! सत्यमेवाद्य त्वत्प्रसादमवाप्याहं यशस्वी जातोऽस्मि । जानामि यन्मां सुखयितुं देवव्रत आत्मसुखानि जुहवाञ्चकार । पुत्राऽधमर्णोऽस्मि जातः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुक्की

तस्मिन् दिवसेऽहं भिलाईनगरं प्रस्थातुकाम आसम् । आदिवसं विस्तृतं विपर्यस्तञ्च कार्यजातं सम्पाद्य मान्ध्यकाले यदा गृहद्वारमासादितवान् तावदेव अदृष्टपूर्वां काञ्चिन् मार्जारीं देहलीस्थामवलोक्य विस्मयो मे सञ्जातः । आसीच्च मे चेतसि—हन्त ! कुत इयं हतभाग्या समागता ? न मया कदाचिदुपच्छन्दिताऽवशिष्टभोज्यकवलैर्न चापि सयत्नं पालिता ! तत्कथमियं स्वजातिप्रकृतिविरुद्धमद्य मादृशासहृदयद्वारि निभृतं तिष्ठति ? प्रायेण मार्जार्यः कमपि समापतन्तं दृष्ट्वैव शनकैः पलायन्ते । तच्छावका अपि कदाचिद् विडम्ब्य परिगृहीताः खुखुत्कारैः पराक्रमं दर्शयन्तो बालचन्द्रकलोपमैर्मसृणनखरैर्ग्रहीतारं भृशं पीडयन्ति मुक्ताश्च वात्यावेगेन विलीयन्ते ।

एवमादि चिन्तयन्नेवाहं पिनद्धं द्वारमुद्घाट्य गृहं प्रविष्टः । परन्तु किमिदम् ? मार्जारी मामनुगच्छन्त्यत्रापि समागता ? यावदेव समधिकपरिधानानि व्यपनीय अर्धोरुकार्धबाहुकमात्राच्छादिततनुरहं पर्यङ्कमधिरूढस्तावदेवासौ प्रगल्भाऽपि सयत्नमुत्प्लुत्य मत्पार्श्वमागतवती । तस्या दुर्व्यवहारोऽयं न मह्यं मनागप्यरोचत । प्रोद्यतहस्तेन ताडयितुं कृताऽभिनयोऽप्यहं तां भीषयितुं यदा न शक्तोऽभवं तदा तां सबलात्कारं गृहीत्वा हस्ताभ्यां पर्यङ्कतोऽधस्तात् अवतारितवान् । परन्तु काऽङ्गीकरोति मन्निदेशम् ? द्वितीय एव क्षणे पुनरसौ मत्सविधमागता ।

विस्मयो मे काष्ठामधिरूढ इदानीम् । यतो हि मार्जारी मामुपेत्य पादेन मे संलग्ना । कदाचिदाम्रकिसलयमसृणया जिह्वया पादतलम्मे लिलेह, कदाचिन् मज्जङ्घया लम्बरोपमं स्वशरीरचर्म सारयन्ती स्नेहं प्राकटीत् कदाचिच्च 'म्याउं-म्याउं'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इति सानुरोधैः प्रणयोद्गारैर्मामात्माभिमुखीकर्तुमियेष। सर्वमपि तदीयमाचरणं मामुत्तरोत्तरं विस्मितं किंकर्तव्यविमूढञ्च विदधदासीत्। आजीवनं यः केनचिन्मानवेनापि सार्धं प्रेम न कृतवान् शुष्ककाष्ठोपमस्य तस्य मम कृते पशुप्रेमेदं सर्वथा नगण्यमेवासीत्।

प्रसङ्गात्तस्माद् ध्यानम्मयाऽऽकृष्टम्। मार्जारी सम्प्रत्यपि मद्गृहान्तराल एवासीत्। परन्तु समुपस्थितामपि तामनुपस्थितामुपकल्प्य स्वकार्याणि सम्पादयितुमहं सत्वरोऽभवम्। महान् कालातिपातः सञ्जातः। इदानीमपि जठरानलशान्तिः करणीयाऽऽसीत्। यात्रोचितपरिधानानि पिटके स्थापनीयान्यासन्। अन्यान्यपि कानिचन प्रस्थानकालविस्मरणीयानि वस्तूनि स्मारं स्मारं संहृत्य तत्र रक्षितव्यान्यासन्। यन्त्रचालित इव तत्सर्वं कर्तुमारब्धवान्।

मार्जार्यपि मयैव सार्धं सत्वरा समदृश्यत। यस्मिन् यस्मिन्नेव कक्षे गच्छामि तत्रैव सापि गच्छति। यदि भूमावुपविशामि तर्हि निभृतं स्थिता मां प्रतीक्षते। समुत्थाय प्रचलति मयि साऽपि प्रचलति। मम क्रोधं नैष्ठुर्यं विद्वेषं प्रणयाद्यप्रदर्शनंच सर्वथाऽवधूय निर्वेदप्रवणा शान्ततपस्विनीव सा छायेव मामन्वगच्छत्। मध्ये मध्ये मां पदात्पदमप्यग्रे गन्तुं न्यवारयत्। तस्यास्तादृशैर्व्यवहारैः परिश्रान्तोऽहं जातः। समुद्वेगजनितरोषो मनसि मे कन्दलितप्राय आसीत्।

तथापि यथाकथञ्चित् सर्वमपि निर्व्यूढम्मया। भोजनं पक्वं समशितञ्च। पाथेयकल्पं किञ्चिदशनजातं पुटके बद्ध्वा संरक्षितम्मया। सम्प्रति सर्वाणि कक्षद्वाराणि पिधाय बहिर्द्वारञ्चार्गलितं कृत्वा प्रस्थानमात्रं करणीयमासीत्। परन्तु दृष्टम्मया यन्मार्जार्या वैक्लव्यं विवर्धमानमासीत्। चक्रारपंक्तिरिव सा कदाचिदुच्चैरारुरोह कदाचिच्च नीचैरवतस्थे। सूत्रनियंत्रिता पुत्तलिकेव पर्यङ्कादासन्दीम्, आसन्दीतो मञ्जूषां, मञ्जूषातः कुड्याप्रकोष्ठं, प्रकोष्ठात्कक्षकुट्टिमं, कुट्टिमान्मच्चरणतलं ततश्चापि क्वचिदन्यत्र गतागतं कुर्वाणा प्रणयोन्मत्ता स्वप्नयक्षीव मार्जारी सा मां हतप्रभं निर्गतिकञ्च व्यधात्।

यावदेवाहं बहिर्निष्क्रमितुमुपसृतवान् तावदेवासौ समागत्य मम पादयोः संलग्ना। कथमपि न मां मुञ्चति। तस्याः कण्ठस्वरे पूर्वतोऽप्यधिकं कारुण्यं समलक्ष्यत। चिन्तितम्मया—अघटितघटनापटीयसि अयि नियतिशैलूषि! कीदृशीयन्ते माया? किं कर्तुं व्यवसिताऽसि? अकृतदारपरिग्रहोऽस्मि। नाग्रे कोऽपि न वा पश्चात्। सर्वथा निर्गृहघट्टोऽस्मि रजकसारमेय इव। मायां नानुभवामि, ममत्वं न परिचिनोमि, करुणामुपेक्षे, दयां तिरस्करोमि। किमपि बन्धनं नाङ्गीकरोमि। एकल एव जातोऽस्म्यनेहसि। एकल एव दिवङ्गन्तुमपि समीहे। हन्त! यदि मां भार्यासहायीकर्तुमेव व्यवसिताऽसि तर्हि किमियं दुर्भगा दुष्टा मार्जार्येव त्वया समवाप्ता?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कस्य जन्मान्तरस्य ममेयं परिणीता या मम पादाम्बुजयोः प्रणतिं नमस्याञ्चोपदर्शयन्ती स्वपातिव्रत्यमनुपालयति ?

अकस्मादेव मनो मे करुणया गाढीभूतम्। एवमासीन्मम चिन्तनसूतौ—हन्त भोः यदि नामेयं मार्जारी होराद्वयादेवं स्वजनोचितं व्यवहारं दर्शयति तत्रावश्यमेव केनचिद् गूढेन कारणेन भवितव्यम्। कदाचित्पशवः पक्षिणश्चापि भाविदुर्घटनां स्वाचरणैः संकेतयन्ति। ममापि यात्रेयं क्वचिदमङ्गलकरी न स्यात् ? मार्जारी दैव-नियोगवशादेव मां रुणद्धि। नात्र कश्चित्सन्देहः। अतएव न प्रस्थातव्यमद्य। श्वो गमिष्यामि, तदुत्तरेद्युर्वा। न काचिद्धानिस्तत्र !

प्रस्थानोत्सुकौ मे चरणावकस्मादेव निगडितौ। मार्जारीं चरणपतितां समुत्था-प्याङ्कपाल्यामहं पुनः गृहाभ्यन्तरं समागतः। तामव्यक्तम्यूत्कारां करतलैस्सारयन् उक्तवान्—देवि पट्टमहिषि ! सकामेदानीं भव ! एष त्वदाज्ञया स्थितोऽस्मि। भिलाईं न गच्छामि। द्रष्टव्यमिदानीं यत् किमर्थं त्वयाऽवरुद्धोऽस्मि। साम्प्रतं मौनं भजस्व। गणपतिवाहकान् द्वित्रान् स्वैरं भक्षय।

यात्रावस्त्राण्यपनीय श्मसानवैताल इव पुनरहं गृहान्तर एव चङ्क्रमणं प्रारब्धवान्। तावदेव स्मृतम्मया यच्चषकमितं पयोऽधुनाप्यवशिष्टमेव वर्तते। कथं न चायं पीत्वैव सुखं शयै ? मृत्तैलचुल्लीं प्रज्ज्वाल्य चायपेयम्मया निर्मितम्। अर्ध-चषकमितं पयश्च शरावे निधाय मार्जार्यै समर्पितवान्। परन्तु मन्नैष्ठुर्यभग्नहृदयेव सा पयश्शरावं स्प्रष्टुमपि न स्वस्थानाच्चचाल। रण्डे ! भ्राष्ट्रमुखं गच्छेति गाल्या तामाक्षिप्यात्मानञ्च परितोष्य विद्युद्दीपं निर्वाप्याहं शयितुं प्रवृत्तः। नानाविधचिन्तन-परम्परानिषद्वरमग्नोऽहं कदा निर्भरं प्रसुप्त इति न ज्ञातम्।

उपगङ्गं वर्तते मद्गृहम्। ब्रह्मवेलात एव गङ्गास्नानार्थिनां कोलाहलात् तीरस्थदेवालयध्वनिप्रसारियन्त्रोद्यतसम्पिण्डितभक्तिगीतशब्दनिवहात् ताम्रचूडानामन-वरतकूङ्कारात् प्रथमतयोड्डीनकलविङ्कमीकुलिजल्पनाच्च प्रायेणोपनगरेऽस्मिन् न कोऽपि स्वस्थो जनः षड्वादनात्परं शयितुमुपक्रमते। अहं पुनर्निसर्गादेव नियतप्रबोधः प्राक् सूर्योदयात्। परन्त्वद्य किञ्चिदन्यदेव संवृत्तम्। यावदेव व्युन्निद्रप्रायोऽहं संसक्त-पक्ष्मणी स्वाक्षिणी प्रोन्मील्य परमार्थतो जागराणि स्वपादतले मया किञ्चिन्मसृण-मसृणं शीतलशीतलं लेहनमनुभूतम्। चैतन्ये समागत एवाहं सम्भ्रमवशात्त्वरयोत्थाया-धिखट्वमुपविष्टः। सझम्पं मयि समुत्थितेऽकस्मादेव ह्यस्तनी सैव मार्जारी वात्या-वेगात्खट्वातोऽधः प्रकूर्द्य किञ्चिद् दूरे समुपविष्टा मामुपलक्ष्य च गुर्र—गुर्र—गुर्रेति मानप्रणयानुरोधसौहार्दादिव्यामिश्रस्वरेण भारतीं वृत्तिं प्रकटयितुमारेभे। निद्राभङ्ग-सञ्जातरोषोऽप्यहं तस्या वल्गुवाचिकं निपीय वेल्लितपुच्छोच्छलनपुरस्सरं नाट्य च समवलोक्य स्वस्मितकानि गूहितुं नाशकम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आसन्दीमुपेत्य मुहूर्तमात्रं स्थितोऽहम् । ततश्चासन्द्यां पादौ तत्त्वा खट्वोपर्युपविष्टः ! मार्जारी सम्प्रत्यपि प्रणयोद्गारान् सहेलं सनाट्यं प्रकटयन्ती मामेवानन्यत्राबद्धदृष्टिपातेन पश्यन्ती दुर्मनायमानेव नायिका तिष्ठतिस्म । प्रह्वीभूतम्मे मानसम् । न जाने कियतामतीतजन्मनां प्रणयसम्बन्धान् पशुयोनिसमुत्पन्नेयं प्रणयिनी मार्जार्यभिव्यनक्तिस्म । विचित्र एव प्रतिभाति कर्मविपाकः । सकृद्वियुक्तो जीवोऽपरस्मिन् जीवने कुत्र कदा किं वा भूत्वा जनिं लभत इति को वेद ? सचुचुत्कारं मयाऽऽहूता सा । मच्चुचुत्कारमाकर्ण्य सशिरःकम्पं सलाङ्गूलवेल्लनं द्विगुणितप्रतिध्वनिना गुंरुत्कारं समुद्गिरन्ती सा मदभिमुखं चचाल प्रचस्खाल च । ततश्चोत्तरोत्तरं सछोटिकावादनम्मयोपच्छन्दिताऽसौ विविधान् स्नेहसमुदाचारान् प्रदर्शयन्ती सङ्कोचवैलक्ष्यसाध्वसादिभावांश्चाप्यभिनयन्ती यथाकथञ्चिदुत्प्लुत्य मत्समीपमागता । अहं तस्याः प्रत्यग्रदूर्वाङ्कुरकोमलं शरीरं सदयकरतलस्पर्शैस्सारयन् स्थितः ।

ततःप्रभृत्येव कुक्कीति सानुकम्पं सम्बोधिताऽसौ बिडाली मज्जीवनसहचरी जाता । मध्याह्न एव स्नानगृहात् निष्क्रम्य पुस्तकालयकक्षे प्रविष्टोऽहमपश्यं यदसौ समाचारपत्रनिर्मितास्तरणे कक्षकोणस्थे निभृतं विश्राम्यति । उच्चैराहूतम्मया—कुक्कि····· कुक्कि ! सकृन्मामवलोक्यापि नासावुत्तस्थौ । ततश्चाहं समधिकसमीपमुपागमम् ! दृष्टम्मया यत्कुक्की शावकद्वयं सवात्सल्यं स्तन्यं पाययन्ती तिष्ठति । हर्षामोदसम्भारविह्वलोऽहमुन्मत्त इव शून्यकक्षे नर्तितुमारब्धवान् । कदेयं शावकौ जनयामासेति महदाश्चर्यम् ।

अकस्मादेव ह्यस्तनस्सायन्तनघटनाक्रमः स्मृतिपथम्मे समारूढः । भिलाईं प्रतिष्ठासुम्मां भृशं रुन्धाना कुक्की निश्चप्रचं तदा प्रसवपीडार्दिताऽऽसीत् । रात्रावेवासौ शावकद्वयमसूतेत्यपि सुनिश्चितं यतो हि पूर्वं कदाचिदपि स्वगृहे मया कापि मार्जारी न संदृष्टा । एवमभून्मे मनसि यथा किमपि चिरप्रतीक्षितं मङ्गलं जातम् । काऽपि स्वप्नदृष्टाऽभीष्टा घटनैव चरितार्थीभूता । महतोत्साहेन ट्रांजिस्टरगीतध्वनिर्मया स्फारीकृतः स्वयमपि च निष्कलङ्कायसपिठरं मुरजीकृत्य वादयितुं प्रारब्धवान् ।

कतिपयदिवसानन्तरमेव प्राचेतसस्य मे लवकुशौ क्रीडितुमारेभाते । निर्वासिता वैदेहीव कुक्की निर्निमेषनयनाभ्यां शावकयोः समुच्छलनकूर्दनोत्पतनस्खलनमृषासमरादिक्रीडाविलसितानि पश्यन्ती वाल्मीकिसदृशाय मह्यं किं किं गूढातिगूढं व्यथावृत्तं निवेदितवतीति कृतेऽपि यावच्छक्यप्रयत्ने नाहं ज्ञातवान् ! केन नृशंसहृदयेन वल्लभेन परित्यक्ताऽसौ ? का चाऽस्या वेदना ? सपत्नीशूलं पीडयति, वल्लभौदासीन्यं वेति किञ्चिदपि ज्ञातुं नाहमपारयम् ।

एवमेव क्रमेण गतवति कतिपयमासनिवहे कुक्कीशावकौ परिपुष्टाङ्गौ आरभेते वृत्तिनिर्वहणक्षमौ च सञ्जातौ । मया सह तयोरविनाभावसाहचर्यमासीत् । प्रतिक्षणं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मदभ्यर्णचरीभूय एव तौ विविधाः क्रीडाः सम्पादयामासतुः। मदुत्सङ्गस्थिते सत्येकस्मिन्नपर ईर्ष्याकषायितलोचनाभ्यां सकैतवं निपुणं निरीक्ष्य वात्यारयेणाक्रम्य सहोदरञ्च नखराघातैर्दूरं प्रक्षिप्य स्वयं तिष्ठति स्म। शरावनिहितं माहिषं पयस्तावहमहमिकया सजवं पिबन्तौ परं शुशुभाते। रात्रावपि मयि निकामं प्रसुप्तेऽतर्कितमेव समागत्य तौ सगाढोपगूढं मत्कुक्षिसंलग्नौ निभृतमशयाताम्। कुक्की सर्वदमनोपमौ शावकौ मदन्तिकस्थावुत्प्रेक्ष्यात्मानमनवशिष्टविधेयामिव मन्यमाना क्वचिदन्यत्र कन्थास्तरणोपरि निषद्य रात्रिमनैषीत्।

शनैश्शनैस्सप्ताष्टमासा व्यतीताः। सर्वेऽपि वयमधुना कुटुम्बिनस्सञ्जाताः। मद्गृहव्यये कुक्क्यास्तच्छावकयोश्च भोज्यपेयौषध्यादिकं सर्वमपि परिगणितमासीत्। न मे दुग्धपानेऽभिरुचिः। दधि तक्रं घृतमेव च विशेषेण मह्यं रोचन्ते। एवम्भूतेऽपि दुग्धहारको गोपालो नियतं किलोपरिमितं प्रत्यग्रपयः प्रातःकाल एवानयतिस्म। तच्च केवलं कुक्कीनन्दनयोर्निमित्तम्।

परन्त्ववधावस्मिन् यद्विचित्रतमं मयाऽनुभूतं तदासीत् कुक्क्याः शिक्षितमनुजीवितं वल्गुव्यवहरणम्। न जात्वसौ मद्गृहं विहाय क्वचिदन्यत्र गता। प्रथमागमनक्षणादेव निरन्तरमसौ असूर्यम्पश्येव राजमहिषी स्वगृहाभ्यन्तर एव तिष्ठतिस्म। अपरञ्चापि परमविस्मयावहं तथ्यमिदं यन्न कदाचिदसौ मूषिकं कमपि जघान न वा भक्षितवती। गृहमेव मदीयं गजवदनवाहनविरहितमिति न। कुक्क्याः प्रवृत्तिरेव नासीदाखुभक्षणे! परित आत्मानं तान् निर्विशङ्कं हिण्डमानान् विलोकयन्त्यपि कुक्की तथागतौ विरक्तिं प्रदर्शयन्ती निष्क्रियैव तस्थौ। जननीदाक्षिण्यपक्षधरौ शावकावपि मूषिककुले विहितानुकम्पौ नितरां शान्तशान्तौ जातौ।

समययानं क्रमेण पुरस्ससार। तच्चक्रेऽपि पर्यायैरुच्चैर्नीचैश्च गच्छती तस्मै गतिं ददतुः। परन्तु सर्वोऽपि कालोऽनुकूलो न व्यत्येति। कदाचिदायाति वासन्तीनिशा रसालमञ्जरीमधुपरिमलभारभङ्गुरा कदाचिच्चोत्तिष्ठति न्यग्रोधप्लक्षपर्कट्युन्मूलनक्षमा धूलिघनबिम्बप्रोद्धुरा भीमवात्या! कुक्क्या निष्प्रत्यवाये जीवनेऽपि कस्याञ्चित् प्रदोषवेलायामीदृश्येव विपत्तिवात्या काचिदुपरूढा।

कोकनदकुलं निस्सङ्गं विधाय संज्ञानिर्भगवान् सहस्रमरीचिमाली वारुणीं दिक्शय्यामधिशिशयिषुरासीत्। आदिवसं विविधैः कार्यव्यापारैरात्मानं शिथिलयाहं शाकापणात् यावदेव गृहद्वारभूमिं सम्प्राप्तस्तावदेव गृहाभ्यन्तरे कुक्क्यास्तुमुलसङ्घराह्वानमश्रौषम्। विस्मयो मे समजनि—हन्त! केन सार्धं युध्यते कुक्की? शावकाभ्यां विनयार्जवविग्रहभूताभ्यां सह युद्धस्य तु प्रश्न एव नासीत्। तत्किं गृहेऽन्या काऽपि मार्जारी समागता? भवतु द्रष्टव्यमिदानीम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं निश्चिन्वानेन मया याददेव गृहद्वारमुद्घाटितं तावदेव सङ्गायीकृतशावका समुच्छ्वसितमसृणरोमराजिः फूत्कारोत्थघोणरोमावलिर्महिषासुरमर्दिनीव कालिका समराङ्गणस्था कुक्की मम दृष्टिपथमागता। पुरतश्च तस्याः क्षामश्यामो दीनदीनो विलोलकनीनिको विहितापराधस्मरणसञ्जातकातर्यः प्रायश्चित्तत्रिधुरः पुष्टविडालः कश्चित् अनुनयविनयमुद्राभिव्यक्तदाक्षिण्यो निभृतं निषण्ण आसीत्। तं तदवस्थं समवलोक्यैव मनसि जल्पितम्मया—हन्त! सोऽयं विस्मरणदारुणचित्तवृत्तिर्दुष्यन्तः कुक्क्याः? कथमयमिहागतो वर्षानन्तरम्? मन्ये ऋतुगन्धोन्मदोऽयं स्वार्थान्धः पुनरपि विच्छिन्नप्रणयसूत्रं नवीकर्तुं समायातः। परन्तु यदि स्वयमेव कुक्की कृतापराधमिमं पाषाणनिष्ठुर नाङ्गीकरोति तर्हि कथमपि गृहाभ्यन्तरे मे नायं स्थातुमर्हति।

इतिमानिनैव मयाऽसौ जरठलम्पटो मिथ्याप्रणयदर्शी विडालस्सहुङ्कारमास्कुन्दितः। सोऽप्यतर्कितक्रमणभयविपन्नस्सन् उदग्रप्लवैः कपाटात्कपाटमतिक्रामन् केनापि द्वाररन्ध्रेण बहिर्निर्गतः। निर्वृतिं प्रपेदे कुक्कीयोगक्षेमनिर्वहणतत्परं मच्चेतः।

परन्तु मोहभ्रमोऽयं मे तदा व्यपगतो यदा कतिपयदिवसानन्तरं दृष्टम्मया यदसौ पुष्टबिडालोऽपि कुक्क्याऽनुमतस्सहवासाय। कथमुभयोस्सख्यमुपपन्नमिति को नु खलु तत्त्वतो वेद? मन्ये मानवसमुदाय इव पशुपक्षिममवायोऽपि रागद्वेषमर्षणकलां सुष्ठु जानाति। अन्यथा कथं प्राक्कलहं कृत्वा पश्चात्सौहार्दमाचरति? सम्प्रति कुक्कीकुटुम्बः पूर्णतामुपययौ। सौभाग्यगर्विता नायिकेव कुक्की शावकयोर्जनयित्रा सह बहून् मासान् यावत् ससुखं न्यवसत्। परन्तु सत्यपि सर्वविधसामञ्जस्ये कुक्की पत्युर्मूषिकभक्षणदोषं न कदापि सेहे। निहतमूषिकं दंष्ट्राभ्यां निपीड्य गृहे प्रविविक्षुं तं कुक्की दूरत एवाग्नेयनेत्राभ्यामजगर्हत्। कथमपि तदागमनं नाङ्गीचकार। एतत्सर्वं निभाल्य हतप्रभोऽहमभवम्। प्रायेणासीन्मनसि मे—हन्त परमेश्वर! मार्जारकुलसमुत्पन्ना केयम्? सर्वथा तपस्विनी मानवीव समाचरति। न कदापि मांसमश्नाति, न गृहाभ्यन्तरे मेहनं पुरीषं वोत्सृजति, न स्वप्नेऽपि वल्लभेतरं मार्जारं पश्यति न वा शावकौ मुहूर्तमात्रमप्यरक्षितौ त्यजति! मानवी गृहवधूरपि सौशील्यमार्जवमीदृशं न सहजं बिभर्ति। निश्चप्रचमियं मार्जारी पूर्वजन्माचरितस्य कस्यापि महतः किल्विषस्य प्रायश्चित्तं सम्पादयति।

अवाञ्छन्नप्यहं मार्जारीकुटुम्बस्य संरक्षकोऽध्यक्षश्च संवृत्तः। अतएव कृतेऽपि प्रयत्ने मनस्तत्रैव मे केन्द्रितमासीत्। कुक्कीदानीं कीदृशी? पत्या सह तदनुरागसूत्रं पुनर्गाढीभूतं न वा? यदि गाढीभूतं तर्हि किं जातमग्रे? शावकयोः का प्रतिक्रियेति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विविधानि वृत्तानि ज्ञातुं नितरामुत्कण्ठितमासीन्मनो मे। नियतसहचरणवशात् पशूनामपि प्रकृतिविकृतिपरिज्ञाननिष्णातोऽहं जातः।

प्रारम्भादेव जरठविडालस्य निसर्गं सन्दिहानोऽहमासम्। वस्तुतो नासौ समायातः कुक्क्याः कृते। कुक्क्याः शावकयोरन्यतरासीन्मार्जारी। साम्प्रतमसौ यौवनदेहलीदत्तचरणा रूपसौन्दर्यप्रतिमाभूता विलक्षणाकर्षणपात्रतामुपगताऽऽसीत्। पशूनां पुनः क्व गम्यागम्यविवेकः? गन्धजीविनस्ते वराकाः। भोगलम्पटविडालोऽपि तामेवानुनेतुं कुक्कीकुटुम्बे सम्मिलितो बभूव। परन्तु कुक्क्याः साध्वसवशात् रहोऽनुपलाभाच्च कामना तस्य पूर्तिं न गता। कुक्की विडालेन सह स्वयन्तु बहुविधान् प्रणयव्यवहारान् सम्पादयतिस्मेति बहुशो मयाऽप्यवलोकितम्। परन्तु कन्यया सार्धं पितुःपित्रा सार्धञ्च कन्यायाः प्रणयानुबन्धं सा मुहूर्तमात्रमपि न मर्षितवती। कुक्क्या अनेनैव व्यवहारेण तर्कितम्मया यदयमेव बिडालश्शावकयोर्जन्मदाताऽऽसीत्।

परन्तु सर्वोऽपि प्रयत्नः कुक्क्याः सिकतागृहोद्यमस्सञ्जातः। भोगलम्पटो जरठबिडाल इव कुक्क्याः कन्यकाऽपि मदनज्वरसमाक्रान्ताऽऽसीत्। द्वादशहोरायता तमिस्रा! द्वादशहोरायतमेव शतसहस्रकृत्यसङ्कुलं दिनम्! कुक्की कियत् प्रयतनं कुर्यात्! कियद्दौवारिकत्वं निर्वहेत्! कियन्निशाजागरणमाचरेत्! हन्त, तदेव संवृत्तं यदनभीष्टमासीत् कुक्क्याः। मर्यादावाटीं कदाचारमतङ्गजः क्षपयाञ्चकार। शीलकौमुदीं कलङ्कसैंहिकेय उपजग्राह। दग्धमार्जवम्। गतं गौरवम्। विलुलितं वैभवम्। विनष्टो विश्वासः। कलङ्कितोऽनुरागः। जितमसाम्प्रतकारिणा पञ्चशरेण। कुक्कीकन्यका पितुरेवाङ्कशायिनी सञ्जाता।

जवनिकापातनात्प्रागन्तिमं दृश्यं प्रस्तौमि। यथाऽहं स्मरामि मङ्गलवासर आसीत्। तस्मिन् दिनेऽहं व्रतमाचरामि भगवतो वातात्मजस्य। सन्ध्याकाले पञ्चवादने यदाऽहं हनूमन्मन्दिराद् गृहं प्रतिनिवृत्तः द्वारञ्च प्रोद्घाटितवान् क्षतविक्षतां रुधिरप्लावितागीं निकृत्तकण्ठीं सहस्रपादसञ्चालनं मृत्युव्यथामनुभवन्तीं कुक्कीं समग्रमेवापश्यम्। मां दृष्ट्वा सा करुणकरुणं म्यूंत्कारैः क्रन्दितुमारेभे।

त्वरया चषकजलमानीय कांश्चन बिन्दून् कुक्क्या मुखे न्यपातयम्। मन्ये तावन्मात्रकृत एव धृतप्राणाऽऽसीत् कुक्की। मद्दत्तजलं पीत्वैव दुर्वारां हिक्कां प्रसूय मुखगुहाञ्चातितरां व्यादाय सा तपस्विनी दिवङ्गता। एवं प्रतिभातम्मे यथा मम कोऽपि परमात्मीय एव मृतः। सनयनजलवर्षणमहं शिशुरिव रोदितुं प्रवृत्तः। विलपन्नेवाहं कुक्कीं नवीनसितवस्त्रवेष्टितां स्वाङ्के निधाय गङ्गातटाभिमुखं प्रस्थितः। पुलिनमवाप्य सोपनिषच्छान्तिपाठं कुक्की मया पतितपावन्या भागीरथ्या लहरीभ्यस्समर्पिता। समुद्गतम्मे मुखात्— गच्छ तपस्विनि! पापक्षयस्तेऽस्तु! सुचरितशीले!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनर्मानवीं तनुं लभस्व । मार्जारीभूताऽपि त्वं स्त्रियोचितशीलसमुदाचारस्य प्रतिमूर्तिरासीः ।

व्यथाभाराक्रान्तोऽहं यावत्कुक्क्या और्ध्वदैहिकं सम्पाद्य गृहद्वारमागतवान् स एव भोगलम्पटो जरठबिडालः कुक्कीकन्यकया सह स्वैरं विहरन् दृष्टिपथमापतितः । साध्वी कुक्की केन नृशंसेन निहतेति सम्प्रति सुस्पष्टमासीत् । प्रतीकाराग्निसन्दग्धोऽहं तं रावणं निहन्तुं सङ्कल्पितवान् । परन्तु ततःप्रभृत्येव मम गृहं तत्याजासौ । कुक्कीस्मृतय एव मम गृहं मनो वा न जातु परित्यजन्ति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चञ्चा[1]

मीरगञ्जेति नामोच्चारणसमकालमेव सर्वो विस्मयमेति । विलक्षण एव स्वादोऽस्य शब्दरसायनस्य ! इलाहाबादनगरस्य गर्भगृहभूतमिदं क्षेत्रम् ऐतिहासिकं महत्त्वं बिभर्ति । स्वतन्त्रभारतस्य प्रथमः प्रधानमन्त्री राष्ट्रनायको जवाहरलालोऽस्मिन्नेवोपनगरे कस्मिंश्चिदावसथे जनिमापेति श्रूयते । धनकुबेराणां बहुभूमिकैर्भवनैर्निचितः विविधसधनपण्यवीथीभिस्सङ्कुलो नगरोद्देशोऽयं प्रभातादारभ्य निशीथं यावत् कोलाहलपर्याकुलस्तिष्ठति । पत्रपुटावशिष्टभक्ष्यजातं परिलिहन्तो बहिरागतप्रायनेत्रगोलका अर्धमृता रथ्याकुक्कुराः, क्षतविक्षतजानुशिखरा भारनिर्वहणाक्षमतया दयमानैः स्वार्थान्धस्वामिभिः स्वैरमरणवरणाय निर्मुक्ताः स्थविरवैशाखनन्दना, यत्र कुत्रापि पट्टशणनिर्मितं छिद्रबहुल प्रसेवमास्तीर्य भूस्वाम्युचिताधिकारेण निषद्य सनिकारं प्रदीयमानं भैक्ष्य संहरन्तो नित्यभिक्षुका, निखिलमपि हट्टं पतिवेतनभूषितैरल्पधनैः क्रेतुकामा आदिवसमापगादापणं परिभ्रमन्त्यो गृहसेविनोत्सेकिन्यः सुभगम्मन्याः प्रगल्भवनिताश्च मीरगञ्जक्षेत्रं नितरां सम्भूषयन्ति ।

एवमादिषु सत्स्वपि मीरगञ्जस्य ख्यातिरन्यैनैव केनचित्कारणेन वर्तते । वेशवाटोऽस्ति प्राचीनभारतीयनागरसंस्कृतेः प्रमुखमङ्गम् । यथा विशालकान्तारे नदी, तारापथे नीहारिका पर्वतशिखरे हिमानी, भवने वलभी, नयनयुगले वा कनीनिका परमां विच्छित्तिमावहते तथैव नगरे मकरध्वजोऽपि भूयिष्ठं छविल्लाकर्षणं जनयति ।

---

१. चञ्चा तु नलनिर्माणे तृणनिर्मितपुरुष इति मेदिनीकोषः (चवर्गे श्लोकः पञ्चमः) 'धोख' इति भाषायाम् । क्षेत्रपुरुषः कृतकपुरुषो वा ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारते यथा दिव्योद्भवा भाषा, दिव्योद्भवं नाट्यं, दिव्योद्भवो नृपतिश्चूयते सर्वथा तथैव वेश्यावृत्तिरपि दिव्योद्भवा। प्रवराभिमानिनो ब्राह्मणा इव गणिका अपि प्रवराभिमानिन्यो यतो ह्यासामेव सद्वंशे जाता मित्रावरुणधैर्यध्वंसिन्युर्वशी, विश्वामित्रामित्रभूता मेनका, प्रमतिमतिहन्त्री घृताची, सुन्दोपसुन्दधर्षयित्री तिलोत्तमा च।

इलाहाबादनगरे सा मकररथ्या मीरगञ्ज एव तिष्ठति। शीलविवेकसदाचारसंवर्धनपरायणे प्रतपति भारतीयलोकतन्त्रशासने राष्ट्रके सर्वत्रापि मकररथ्यासिंहद्वाराणि साम्प्रतमवरुद्धानि वर्तन्ते। शरीरक्रयविक्रयव्यापारः देशवाटेऽधुना कर्तुं न शक्यते। तत्कृते समाजेऽन्ये सदुपाया इदानीं प्रचलिताः। धनकुबेरैर्मुम्बईकलिकातादिमहानगरेषु पञ्चतारका बहुभूमिका विश्रामालयाः स्थापिता यत्र कामदेवायतनमपरिहार्यम्। अत्र न कुलक्रमागता गणिका अपितु काञ्चनमृगलोभिता अभिजातकुलोत्पन्नाः कन्यकाः कलाप्रदर्शनव्याजेन नृत्यन्ते। पुराचीनैव मदिराऽभिनवेषु गोलकेषु वर्तत इति दिक्।

मीरगञ्जे निवसन्त्यः सर्वा अपि गणिका इदानीं यथाकथञ्चिद् गृहिण्यस्सञ्जाताः। तासामन्यतमा एवोत्कोचादिभिः सद्वृत्तान् रक्षिजनान् विमोह्य प्राक्तनपद्धत्या धनान्यर्जयन्ति। समधिकास्तासां केवलं विवाहाद्यवसरेषु नृत्यं गीतं वा प्रस्तूय स्वकुटुम्बं परिपालयन्ति। रक्षिजनोत्पीडिताः काश्चन पलायिताः।

हीराबाई सम्प्रत्यशीतिवर्षदेशीया जाता। साऽप्यस्मिन्नेव विटतीर्थक्षेत्रे सपरिवारं निवसति। कुटुम्बे तस्याः पुत्री मुन्नीबाई, जामाता महेश्वरो नप्त्री सोमा च निवसन्ति। कुटुम्बस्यास्य विस्तृतं परिचयन्तु पश्चाद्दास्याम्येव। परन्त्वेतावदेव कथारम्भे पाठकैर्बोद्धव्यं यन्न हीराबाई न वा तदात्मजा मुन्नीबाई शरीरविक्रयव्यापारे कदापि संलग्ना। वस्तुतोऽनयोरन्यतरा सविलासं सनाट्यं द्वित्राणि पदानि भ्रमितुमपि न जानाति, का कथा पुनः हेलाविलासकटाक्षमण्डितस्य नृत्यस्य? नियतेर्विधानमेवेदं यन्मुन्नीबाई सकुटुम्बं लटकमेलकेऽस्मिन् क्षेत्रे निवसति। परन्तु मीरगञ्जवास्तव्यत्वादेव काकतालीयन्यायमाश्रित्य मुन्नीबाईमधिकृत्य कापि परिभाषा न विधेया।

मुन्नीबाई सम्प्रति पञ्चचत्वारिंशद्वर्षदेशीयाऽऽसीत्। अस्तोन्मुखप्रायेऽपि यौवने तस्या मदविभ्रमजनयितृ लावण्यमक्षतमासीत्। एवं प्रतीयते स्म यदनङ्गकेलिकरम्बिते वयस्सन्धिसोपाने निश्चप्रचमसौ रिरंसुयुवजनस्वप्नसुन्दर्यभविष्यत्। वसन्तोपगमजरसालकिसलयताम्राधरा कम्बुग्रीवा कपोतहस्तनयना पिण्डकीपदगतिर्मितभाषिणी मुन्नी सम्प्रत्यपि यौवनोचितं विलासं बिभ्रती मिमिलिषूणां महदाकर्षणं विदधे।

पतिस्तस्या महेश्वरनामा सम्प्रति षट्पञ्चाशद्वर्षदेशीय आसीत्। बकुलफलनिभे लघुनयने तस्य जरठस्य गह्वरमग्ने। सम्मुखीनमधोदन्तद्वयमपि सततताम्बूलभक्षणवशाद् गलित्वा पेततुः। आगुल्फमुद्गताः समुच्छ्वसिताश्च धमन्यश्चन्दना-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेष्टितदन्दशूकविच्छित्तिं जनयन्ति स्म। अकालवृद्धो महेश्वरो मुन्नीबाय्यामतितरां सिष्णेह। तत्परितोषार्थमाकाशात्तारकाण्यपि लूत्वाऽऽनेतुं नितरां बद्धपरिकर आसीत्। पितृपरिचयविरहितोऽमात्रस्मिन्नेव मीरगञ्जे परिस्कन्दीभूय यथाकथञ्चिच्छैशवं निनाय। पश्चान्मीरजिकोऽपि सञ्जातः। परन्तु सर्वनाशात्प्रागेव महेश्वरो मुन्नीबाईं प्राप। ततः प्रभृत्येव पतनगर्ताभिमुखी तस्य जीवनसरणिः परावृत्योदयाचलचूड-चुम्बिनी जाता। सम्प्रत्यसौ ऋणदानादानव्यवसाये संलग्नः। उत्तमर्णस्य कस्यचित्श्रे-ष्ठिनो गृहे लग्नकवृत्या वृत्तिं निर्वहन् महेश्वरो मासान्ते सम्प्राप्तेन भरण्येन कुटुम्बं परिपालयतिस्म।

उभयोर्मध्ये एकैव सन्ततिरासीत् कन्या, सोमानाम्नी! रूपलावण्येन जननीं सौजन्येन पितरं स्वरमाधुर्येण च परभृतिकामनुकुर्वती घनसारयष्टिरिव मुग्धाङ्गनो-चितकमनीयगुणपरिमलं परितो वितन्वती सोमा तस्मिन् लघुपुटीरे नीराजनशिखेव विरराज। इदानीमेकविंशे वसन्ते विद्यमाना सा विश्वविद्यालये मध्यकालीनमिति-हासविषयमवलम्ब्य एम्. ए. पूर्वाधपरीक्षामुत्तर्तुं प्रयतमानाऽऽसीत्।

अवसिते सति विजयदशम्यवकाशे कस्मिंश्चित्सान्ध्यकाले सुदर्शनयुवकः कश्चित् गृहमागतः। सोमा गृहस्योपरितने कक्षेऽध्ययनमग्नाऽऽसीत्। महेश्वरोऽपि तावता कालेन श्रेष्ठिगृहान्नोपावृत्त आसीत्। अतएव कपाटौ ताड्यमानौ मुन्नीबाय्येवोदघी-घटत्। दृष्ट्वा सर्वथाऽपरिचितमनागतपूर्वं तं युवकं यावदेव मुन्नीबाई सोमासहपाठिं बुद्ध्या तामाह्वयितुं निविवर्तिषते तावदेव युवको बभाषे —

— अम्ब! किमिदमेव सोमाया गृहम्?

— अथ किम्! किं भवान् तस्याः सहाध्यायी? मुन्नीबाई सस्नेहमपृच्छत्।

— सम्यगवगतं भवत्या। प्रवीनोऽस्मि। नाममात्रेणैव सोमा मां प्रत्यभिज्ञा-स्यति। सस्मित जगाद युवकः।

— अलं बहिः स्थित्वा। अध्यासन्दिकमुपावशतु भवान्। सोमामाह्वयामि।

जननीसन्देशं निशम्य सोमा विद्युद्गत्या समागता कक्षे च स्वकीयमध्यापकं तिष्ठन्तमवलोक्य सा हतप्रभा जाता। सात्कारध्वनिरुद्गीर्णोऽकस्मादेव। नामन्त्रणं न प्रस्तावो न पूर्वप्रसङ्गः कश्चित्। न जातु सोमया तस्मै स्वगृहावस्थितिसङ्केतोऽपि दत्तः। तर्हि कथमयं महाभागस्समागतः? सोमा सततमेव विस्मयदोलाधिरूढा मनस्येवमादीनि चिन्तयितुं प्रवृत्ता प्राघुणाचितं सत्कारमपि विस्मृतवती। तावदेव युवकोऽवदत्

— एवं विस्फारितनयनाभ्यां किं पश्यसि? पूर्वमेवोक्तमया यद् वज्रपात इव कदाचित्तव गृहोपरि पतित्वा त्वां विस्मापयिष्यामि! तमेव वज्र-पातमद्य पश्यसि। पश्यसि न वा?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमुक्तवत्येव तस्मिन् उभौ परस्परं निपुणं विलोक्य हसितुं प्रवृत्तौ। उभयोरिङ्गिताकारं विदित्वा चातुरक्षिकं प्रेम च सम्यक् सम्भाव्य मुन्नीबाई स्तब्धा जाता। परन्तु नायमासीत् प्रश्नस्यावसरः। तत्सर्वं कालान्तरे प्रच्छनीयं कृत्वाऽसौ ईषद्रोषाविष्टेव तनयामवादीत् —

—हसन्त्येव स्थास्यसि किञ्चित्सत्करिष्यस्यपि वा? न पृष्टं जलं न वा किञ्चिदशनजातम्। किमिदमेव शिक्षसे विश्वविद्यालये?

आगताऽस्म्यम्ब! इत्युक्त्वा सोमा द्राङ्मन्दानसे प्रविष्टा। कतिपयनिमेषानन्तरमेव सा चायपेयचषकत्रयं मिष्टान्नं किञ्चिदशनजातञ्चानीतवती। तावन्तं कालमुभौ निरर्थकप्रश्नैरचक्षपताम्। सोमा सर्वमपि सामग्रीं काष्ठफलकोपरि व्यवस्थाप्य स्वयमपि मातुः पार्श्वे निषसाद। सर्वे पेयं पपुः। सोमाजनन्या आग्रहवशात्प्रवीनो मिष्टान्नमपि किञ्चिदाश। मध्ये-मध्ये सोमाप्रवीनौ विश्वविद्यालयीयोदन्तमधिकृत्यापि वार्तां कृतवन्तौ। प्रायेण होराधं यावदवस्थाय मुन्नीबाईं सादरं प्रणम्य प्रवीनो जगाम।

परन्तु मुन्नीबाई वात्यान्दोलितदीपिकेवाशान्ताऽऽसीत्। तस्याः क्षतं पुनर्नवतां प्रपेदे। अस्मिन्नेव वयसि साऽपि मुषिताऽऽसीत्केनचिदतिसन्धानपरायणेन श्रीमत्तनयेन। परन्त्वात्मानमिव स्वपुत्रीमपि मुन्नीबाई कस्यचित् लक्षपतिनन्दनस्य हस्ते न कदापि क्रीडनकीर्तुमियेष। पर्वतोद्गता नदी संयमच्युता कन्या च निसर्गत एवाधो गच्छतः। अतएव मध्यएव तयोर्बन्धनोपायो विधातव्यः।

गतप्राये एव प्रवीने मुन्नीबाई सरोषं पप्रच्छ दारिकाम्—सोमे! कोऽयमासीन्माणवकः? कथमिहायातः? अवश्यमेव त्वया गृहसंकेतपुरस्सरमामन्त्रितस्स्यात्! ब्रूहि, कोऽयमासीत्?

—अम्ब! नायमासीन्मम सहाध्यायी! डॉक्टरप्रवीनचन्द्रमहाभागा इमे मामध्यापयन्ति। अतीवलोकप्रियाः सहृदयाः स्वविषयमर्मज्ञा इमे। अम्ब! त्वच्छीर्षेण शपामि न मयाऽऽमन्त्रिता इमे। गृहसङ्केतोऽपि न दत्तो मया। अहन्तु स्वयमेव विस्मिताऽऽभूवमिमं स्वगृहेऽवलोक्य!

एतदाकर्ण्य मुन्नीबाई विस्मिता जाता। प्राध्यापकोऽयमासीत्? अन्यथा सम्भाव्य मत्र्त् पापमनुष्ठितम्मया। हा दैव! सोमा किं चिन्तयिष्यति? स्वपुत्र्याश्चरितमपि शङ्कितम्मया। अत्याहितं जातम्। मुन्नीबाई पश्चात्तापविधुरा सती शिशिरनिम्बशाखेव नयनाभ्यामश्रूणि पातयामास।

सोमा सर्वमवजगाम। साऽनुतापपरायणां मातरमङ्के निधायाधिशय्यमशेत बहुशश्च तां लालयाञ्चकार।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—वत्से ! क्षन्तव्यास्मि । अन्यथा संभावितम्मया त्वद्विषये ।

—न तेन ममावमानः । अम्ब ! तवान्यथासम्भावनायामपि मम कल्याणमेव तिरोहितमासीत् !

—मूढे ! कथं न त्वया ज्ञापिताऽहं यत्प्रवीनचन्द्रस्तवाध्यापकः ? हन्त तं त्वत्सहाध्यायिनमवगच्छन्त्या मया तद्गौरवमपि न साधु रक्षितम् । जीर्ण-शीर्णे मम कुटीरे किमासीत्तत्स्वागतोचितम् ! विषण्णस्वरेण प्रोवाच मुन्नीबाई ।

—अलं सन्तप्याम्ब ! तत्परिचयस्यावसर एव नासीत् । त्वं प्रागेव तं मत्सह-पाठिनं निश्चितवती । सोऽपि विनोदभावनया बाढमिति जगाद । पश्चादहमागता । आवयोर्हासस्येदमपि कारणमेकमासीद्यत्त्वं मम प्राध्यापकं मम सहाध्यायिनमवगच्छसि । परन्तु नावसादो विधेयः । अतिसहृदय-स्सरलो विनोदपरायणश्चासौ । कक्षायामपि छात्रैस्साधं स एवमेव व्यवहरति ।

परन्तु मातृहृदयं घासबीजसङ्कुलं भूतलमिव भवति । निदाघे भूतलं शुष्कं शून्यञ्चावलोक्यते । परन्तु वर्षत्येव जलदागमबलाहके निरन्तरालशतसहस्रतृणा-ङ्कुरनिचितं जायते । मुन्नीबाय्या हृदयेऽपि कियन्त्येव शङ्काबीजानि विपन्निदाघ-कालादेव निक्षिप्तान्यासन् । अद्य पुनः सम्प्राप्तेऽवसरे क्रमेण तानि प्ररोढुमारेभिरे ।

रात्रौ भोजनादिकं यथापूर्वमेवाभूत् । महेश्वरो वृद्धाम्बा हीराबाई च शयनार्थं गतौ । सोमा जनन्या सार्धमेव सुष्वाप । उभेऽपि निरुद्धवाक्प्रसरे । मुन्नीबाय्येव मौनं बभञ्ज ! पुत्रीं सम्मुखीनां विधाय सस्नेहमपृच्छत्—

—सोमे पुत्रि ! पृच्छामि किञ्चित् । प्रवीनस्य त्वयि स्नेहमवलोक्य शङ्कते मे मनः । वत्से ! प्रणयसूत्रे विच्छिन्ने सति नार्येव पराजयं पश्यति न पुरुषः । प्रकृत्या शरीरेण समाजदृष्ट्या च नारी परमनिर्बला वत्से ! यतो हि उभयसाधारणे सत्यपि सम्भोगसुखे गर्भं नार्येव धारयति न पुरुषः । कुलटा व्यभिचारिणी वा सैव ख्याप्यते न पुरुषः । कलङ्कितं जीवनं सैव दुर्वहति न खलु पुरुषः । येनाचरणेन वराकी नारी निखिल-लोकतिरस्कारं भजते तेनैव पुरुषः प्रशाशस्यते छविल्लप्रकृतिरसाविति समुद्घोष्य ।

पुत्रि ! अग्निरेव लौहं द्रवयति । यदि प्रवीनचन्द्रस्य प्रगाढोऽनुरागबन्ध-स्त्वयि नाभविष्यत्तर्हि श्रेष्ठकुलोत्पन्नोऽसौ सर्वगुणसम्पन्नः प्राध्यापकः कुख्यातेऽस्मिन् मीरगञ्जक्षेत्रे स्थितं मम प्रत्यङ्गभग्नं दुर्व्यवस्थं गृहं कथमपि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नागमिष्यत् । सोमे ! अलम्मामन्धकारे निधाय ! पुत्रि ! स्पष्टं भण, कोऽयं युवकः । कं वंशं कां जातिं कं जनपदञ्च बिभर्ति ? त्वामधिकृत्य च कीदृशोऽस्य विचारः ?

जननी मर्माणि पस्पर्श । सोमा तदञ्चले निलीय रोदितुं प्रवृत्ता । मातुराश्लेषबन्धो दृढतरो जातः । सा पुत्र्याः पृष्ठं सारयन्ती तां प्रभूतं सान्त्वयामास— कस्माद्रोदिषि वत्से ! मयि जीवन्त्यां वेदनालवोऽपि त्वां स्प्रष्टुं न शक्नोति । त्वमसि मम पर्णशालाया दीपशिखा, मम जीवनस्याशा, मम स्वप्नानां जागरणपरिणतिः । सोमे पुत्रि ! त्वज्जनन्यहं त्वत्सौख्यमेव समीहे । न मे पूर्वपरिचितस्ते युवाध्यापकः । तथापि प्रथमदर्शनेनैव तस्याहमपि गाढमाकृष्टा । सर्वगुणसम्पन्नोऽसौ । परन्तु वत्से ! भूमौ स्थित्वा हिमांशुपरिरम्भाकांक्षा न जातु करणीया । क्व वयं सर्वविधसङ्कटापन्नाः पामरोचितजीवनपद्धतिनिर्वहणाभ्यस्ता दीना अकिञ्चनाः क्व चासौ समृद्धवंशाङ्कुरः कश्चिद्भर्तृदारकोचितप्रयत्नैरुपायैश्च संवर्धितो विश्वविद्यालयाध्यापकः ? उभयोर्न किमपि कुत्रापि साम्यम् । इत्युक्त्वा जननी विरराम । सोमाऽवदत्—

—मयाऽसकृन्निवारितोऽपि भृशमनुरुद्धोऽप्यसौ मां परिणेतुमिच्छत्यम्ब ! किं करवाण्यहम् ? साध्वसवशादेव वृत्तमिदं मयाऽद्यावधि हृदये गोपितम् । परन्तु कतिपयदिवसेभ्यः प्राक् प्रवीनो मामवादीत्यद्गृहमागत्य स्वयमेवाहं प्रस्तावमिमं त्वत्पित्रे निवेदयिष्यामि ।.....एवमुक्तवन्तमपि तमहं कतिधा न न्यवारयम् ? परन्तु कः शृणोति ? प्राध्यापकोऽसावम्ब ! तमाद्रिये । सीमातिक्रमणं कर्तुं न शक्नोमि ! आत्मानं स्थिरीकृत्य सोमा सव्यथमाचचक्षे सर्वम् ।

पुत्र्या आर्जवं गोपनरहितं निवेदनञ्च श्रुत्वा मुन्नीबाई स्वयमपि ममतोद्वान्ताश्रुततिभिः क्लिन्ना सञ्जाता । सस्नेहं भणितवती –

—सोमे ! कदाऽऽरभ्य प्रवीनस्त्वां जानाति ?

—अम्ब ! गतवर्षादेव । तदाऽस्य सर्वप्रथमं विश्वविद्यालये नियुक्तिर्जाता । शिक्षकोऽयमस्माकमासीत् । पश्चादस्यैव संरक्षणे वयं सर्वे सुहृदः कौशाम्ब्युत्खननं पर्यवेक्षितुं गताः । तस्यामेव यात्रायां मम गायनं श्रुत्वा प्रथमवारमसौ मम परिचयं पृष्टवान् ।

—हुम् । अन्यच्च किमपि ? जिज्ञासमाना जननी पपच्छ ।

—मम कुटुम्बस्थितिं मन्मुखात्साधु विज्ञायापि मामङ्गीकर्तुं तस्य दृढनिश्चयः । श्रुत्वाऽम्बा प्रमाणम् । सोमा जगाद ।

—भवतु । न चिन्ता कार्या वत्से ! युवकोऽयं दृढसङ्कल्पः प्रतीयते । प्रक्ष्याम्यहमेव तमस्मिन् विषये ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अग्रवर्तिनि संवादविषये नानल्पं वक्तव्यमस्ति। प्रवीनेन मह मुन्नीबाई स्वयमेव वार्तां कृतवती। सर्वमाख्यातं तया सस्नेहम्—पश्य वत्स! सांमासदृश्यः सहस्रमिता रूपगुणसौजन्यमण्डिताः कन्यकास्त्वां प्रतीक्षन्ते। तस्या एव कन्यकाया पाणी गृहाण या तव कुटुम्बिनां विशेषेण पितुस्तेऽभिप्रेता स्यात्। तत्रैव ते सुखं वर्तते। न वयं कुलीना वत्स! न धनिनो न वा त्वत्समकक्षाः। अतएव सोमामभिलषन् त्वं निश्चप्रचमेव द्वयोरपि परिवारयोः कृते सङ्कटं कौलीनं विपत्तिञ्चोत्पादयिष्यसि। इदानीमपि सोमा दुग्धमुख्येव। नाधरोत्तरं नोच्चावचं विजानाति। त्वय्यतितरां श्रद्दधाति। तथापि तामहं प्रबोधयिष्यामि। परन्तु प्रवीन! त्वमपि विरमास्मात् प्रसङ्गात्। इमां हतभाग्यां जन्मदात्रीं मोपतापय वत्स!

प्रवीनश्शान्तभावेन सर्वमशृणोत्। मध्येवार्तं न प्रत्यवायं विदधे न चाऽप्यधीरो जातः। परन्तु वाचिकं परिसमाप्य यावदेव मुन्नीबाई तूष्णीमुपगता तावदेवासौ सविनयं प्रोवाच—

मातः, यथा त्वं सोमाया अम्बा, तथैव ममापि। मातृहीनोऽस्मि। पितामह्या सयत्नं संवर्धितोऽस्मि। परन्तु यदारभ्य त्वामपश्यमहं तत एवात्मानं जननीवन्तमवगन्तुमारब्धवान्। सम्प्रति सोमाप्रवीनौ द्वावपि तव जातकौ। परन्तु त्वं मां पृथक्कृत्यैव विचारयितुं प्रवृत्ताऽसि। तन्न युक्तमम्ब! सोमा मम जीवनलक्ष्यभूता ममाभिन्नसहचरी मदभीष्टप्रणयिनी मत्सर्वस्वभूता च।.....

नाहं कृत्रिमपुत्रकः। सम्यगधीता मया विद्याः। विश्वविद्यालयाध्यापकोऽस्मि। नाहं नास्तिको न वा परम्पराविरोधी। परन्तु परम्पराया अन्धानुकरणमपि न मह्यं मनागपि रोचते। गुणचरित्रकर्मार्जितवैशिष्ट्य एव मम दृढो विश्वासो न पुनर्जातिमात्रायत्ते वृथाऽभिजात्याभिमाने।.....

अम्ब! नाहं त्वदतीतं जिगवेषिषुः। न चापि त्वद्वर्तमानवैभवं दारिद्र्यं वा मीमांसुः। काममध्यापयाम्यहमितिहासं परन्तु दृष्टिर्मे भविष्य एव केन्द्रिता। परिणेष्यामि सोमामेवान्यथाऽऽजीवनमनूढ एव स्थास्यामीति मे दृढो निश्चयः।.....

विश्वसिहि मातः! नाहं येन केनापि व्याजेन सोमां प्रलोभ्य गृहादस्मात्समुत्सारयिष्यामि। यदि साह्लादं सविश्वासं सवात्सल्यञ्च सोमायाः पाणी मह्यं प्रदास्यसि तदैव सोमां ग्रहीष्यामि। अन्यथा देवतां तां स्वमनोमन्दिरे प्रतिष्ठाप्य.....।

इत्यर्धोक्त एव प्रवीनं निरर्गलं रुदती मुन्नीबाई तस्याननं स्वकरतलेन पिदधे सदयं प्रोवाच च—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—अलमलमुत्तरेण वत्स ! क्षन्तव्याऽस्मि । सम्प्रति न मे किञ्चित्प्रतिवक्तव्यम् । अद्यप्रभृति सोमा त्वदीया । येन केनापि विधिना तव मम च प्रतिष्ठाऽक्षता स्याल्लोकोपहासश्च न भवेत्तथा वर्तेथाः । प्रथमपरिचयक्षणादेव पुत्रतामुपगतोऽसि । इदानीं पुनः पुत्रोऽप्यसि जामाताऽपि जातोऽसि !

सीतान्वेषणपरं सुन्दरकाण्डं जीवनरामायणस्य परिसमाप्तमेव । परन्तु युद्धकाण्डमिदानीमप्यवशिष्टमेवासीत् । तस्याप्यवसरो द्रुतगत्योपस्थितः ।

प्रवीनस्य पितृचरणो राजमणिर्दिवङ्गते सति प्रथमकलत्रे मात्राज्ञया स्वभविष्यचिन्तयाऽपि पुनः परिणिनाय । तदा प्रवीनः पञ्चवर्षदेशीय एवासीत् । पितामह्या उत्सङ्ग एव प्रायेण प्रवीनश्शैशवं यापितवान् । विमातुर्जाते तस्य द्वे भगिन्यौ नलिनी मालिनी चास्ताम् । विमाताऽपि वैमात्रिकसरणिप्रतिकूलं प्रवीनेऽतितरां स्निह्यतिस्म । यदि नाम तातस्य द्वितीयोद्वाहकाले प्रवीनः पञ्चवर्षदेशीयो नाभविष्यत्तर्हि स्नेहवात्सल्यमूर्तिं तां नवागतां जननीं विमातरमपि नाज्ञास्यत् । एवं हि प्रवीनकुटुम्बे सर्वतः सामञ्जस्यमेवासीत् ।

प्रवीनपितामहो जौनपुरजनपदाभिजन आसीत् । इदानीमपि तत्रस्थे ग्रामे प्रवीनस्य पैत्रिकं गृहं क्षेत्राणि कृषिकर्मोपयोगीनि वाटिकाश्च वर्तन्ते । इलाहाबादनगस्योत्तराञ्चले उपगङ्गमासीत्तस्य नूतनं गृहं मेहदौरीवसतौ । गृहमिदं प्रवीनस्य पिता राजमणिर्निर्मापितवान् स्ववेतनेन । सम्पूर्णोऽपि कुटुम्बस्सम्प्रत्यस्मिन्नेव गृहे सुखमुवास ।

राजमणेश्चिरपरिचितस्सतीर्थ्यो निरञ्जनोऽपि तस्यैव प्रतिवेशे राजप्रासादोपमं भवनं निर्माय निवसतिस्म । स खलु भूमिपतिनन्दन आसीत् । इदानीं प्रयागोच्चन्यायालये ख्याततमोऽधिवक्ताऽऽसादसौ । स्वकीयां कन्यां पितृविभवगर्वितां सामान्यरूपाकृतिं प्रवीनेन सार्धं परिणेतुं चिरादियेष निरञ्जनः । परन्तु वृत्तिमवाप्यैव विवाहचिन्तां करिष्य इति दृढसकल्पं विज्ञाय प्रवीनस्य समुचितावसरं प्रतीक्षमाणोऽसौ समयमनैषीत् ।

सोऽपि समयस्समाययौ । प्रवीनोऽधुनाऽध्यापको नियुक्तो विश्वविद्यालये । परन्तु विवाहप्रस्तावं यावदुपनयति निरञ्जनस्तावद् विलम्बो जातः । प्रवीनस्य प्रीतिस्सोमायां तावता कालेन बद्धमूलाऽभवत् । आरब्धे सति परिणयसन्दर्भे प्रवीनः स्वनिश्चयं प्राकटीत् । तत्सर्वं निशम्यार्जवपरायणो राजमणिः पुत्रस्य योग्यताव्यवस्थाञ्च मीमांसमानो न किञ्चिदुवाच परन्तु रोषविसंष्ठुलो निरञ्जनः प्रश्नं प्रतिप्रश्नं कर्तुमारभत—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—प्रवीन ! जानासि सम्यक् यन्ममात्मजया कमलया सार्धं तवोद्वाहः प्रागेव निश्चितः । एवम्भूते कथमद्यान्यथा वक्तुमुत्सहसे !

—श्रीमन् ! विवाहार्थं कृतप्रयत्नं भवन्तं जानामि । परन्तु प्रागेव निश्चितं विवाहसम्बन्धं नावैमि । सम्बन्धोऽयं कदा निश्चितः केन निश्चितः कस्माद्वा निश्चितः ? तातपादस्तु मामनामन्त्र्य कथमपि कमपि सम्बन्धं नाङ्गीकरिष्यतीति मम विश्वासः । अहमस्मि परिणेता नाऽन्यः कोऽपि । तर्हि ममाभिरुचिमविज्ञाय कथम्मां यया कयाचिदपि कन्यया सार्धं शृङ्खलयितुं शक्यते । परिणयोऽयं न पुनः पुत्तलिकाक्रीडनम् !

स्वभावादेव जाल्मो नक्तन्दिवं व्यभिचारापहरणकृत्यालुण्ठनादिपापवृत्तपरिगतमनोवृत्तिर्न्यायालयकीटो निरञ्जनो निशम्य प्रवीणप्रवञ्चनं प्रजज्वाल तथापि धैर्यं नामुञ्चत् । वाचि माधुर्यं मिश्रयन् वात्सल्यं स्नेहञ्च नाटयन् पुनर्जगाद—

—प्रवीन ! मत्कन्यया-सार्धं विवाहास्वीकरणे केनचित्कारणेन भवितव्यम् !

—श्रीमन् ! स्वाभिरुचिं पूरयन्ती कन्या मयाऽवेक्षिता । तामेव परिणीय स्वसौख्यं पश्यामि ।

—का सा ?

— ममैवान्तेवासिनी सोमा ।

—न मया कन्याभिधानं पृष्टम् । कस्यात्मजाऽसौ, किञ्जातीया कुत्रत्या चेति-ज्ञातुमिच्छामि ।

—न्यायालयपद्धत्यैव सर्वमवगंतुमिच्छति भवान् ! सगूढव्यङ्ग्यमवादीत्प्रवीनः । न तत्र किञ्चिद्रहस्यम् । तस्याः पिता महेश्वरो जात्या ब्राह्मणो मीरगञ्जे स्वनिर्मिते लब्धावसथे निवसति । निम्नमध्यमवर्गीया जनास्ते । मन्ये एतावदेव पर्याप्तं भवदुत्कण्ठां विनोदयितुम् ।

-- मीरगञ्जे निवसति ? मीरगञ्जे को नु खलु ब्राह्मणः ? क ईदृशो यं नाहं जानामि ! अकस्मादेव निरञ्जनो वाक्कीलोचितं सत्यं प्रचकाट ।

—श्रीमन् ! प्रख्यातोऽधिवक्ता भवान् । पुरोहितो मीरगञ्जस्नानार्थिनाम् । सत्यमुक्तं भवता ! परन्तु मीरगञ्जे न केवलं रूपाजीवा विटाश्चेटा लम्पटाश्च निवसन्ति । तत्र केचन साधुचरिताः सभ्याश्चापि सन्ति । महेश्वरस्तेषामेवान्यतमः ।

किं कुर्यादिदानीं निरञ्जनः ? प्रवीनस्य दृढनिश्चयं तत्पितुर्मौनञ्च निभाल्य नैराश्यमुपगतः । हृदयेऽमर्षपाथोधिं संहृत्य यथाकथञ्चिद् गृहमाजगाम । परन्तु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नासावक्रियस्तथो । कार्यालयलिपिकसाहाय्येन महेश्वरविषयकं सर्वमपि तथ्यजातं सञ्चिकाय ।

महेश्वरो वेश्यागृहे मौरजिक आसीत् । तस्य भार्या मुन्नीबाय्यपि सर्वथाऽज्ञातकुलशीलाऽथ च नाग्निसाक्षिके विवाहमण्डपे महेश्वरेण पाणिभ्यां गृहीतेति सम्यक् सप्रमाणं जज्ञौ निरञ्जनः । एतत्सर्वं वृत्तं सकृत् पुनरसौ राजमणिसमक्षं संस्थाप्य पप्रच्छ—

राजमणे ! त्वमसि मम बालमित्रम् । तव हितकाम्ययैव ब्रवीमि । चिन्तय तावत् । मौरजिकगृहे सम्बन्धं विधाय समाजे कथमाननं दर्शयिष्यसि ? दारकाद् विभेषि किम् ?

—बन्धो निरञ्जन ! मम प्रकृतिं बाल्यकालादेव जानासि । व्यक्तिस्वातन्त्र्यपक्षधरोऽहम् । नाहं बिभेमि पुत्रात् । परन्त्वात्मन एव बिभेमि । अश्रद्धेयं कर्म कुर्वतो मे सदा भयं जायते । प्रवीनो मत्तोऽप्यधिकशिक्षितः संवेदनशीलो विवेकपरायणश्च । यदि मदिच्छाधिरोपणात्तस्य दाम्पत्यजीवनं विक्रियते तत्संवरणीयैव साऽऽकांक्षा । सर्वविधमङ्गलमेव विवाहस्य लक्षणम् । समाजे न केवलं प्रवीन एव त्वत्कन्योचितो वरः । शतमिताः सहस्रमिता दुर्लभा वर्तन्ते । तन्निर्बन्धो न कार्यः । अहमपि त्वया सह वरान्वेषणे चलिष्यामि । तदयं प्रसङ्गोऽत्रैव विरमतु ।

—एतदुक्तं भवति यद्भवानपि पुत्रमोहान्ध एव ! पुत्रो वेश्यात्मजां परिणयति त्वञ्च मामुपदिशसि शुक्रनीतिम् ? रोषाविष्टो निरञ्जनो बभाषे ।

—मामन्यथा सम्भावयसि । शान्तेन मनसा विवेचय घटनाचक्रम् । तदैव समाधानमवाप्स्यसि । राजमणिरवदत् ।

—भ्राष्ट्रे गच्छतु तव समाधानम् । गतोऽसि । वीतोऽसि । पतितोऽसि । पुत्रो विश्वविद्यालये प्राध्यापक इतिमात्रेण न ते पदानि भूमौ पतन्ति ? एतावानुत्सेकः ! ईदृशाः कियन्त एव प्राध्यापकपुच्छा मयाऽवलोकिताः । एवमधिक्षिपन्नेव निरञ्जनः क्रोधावेशात्कम्पमानोऽलक्ष्यत ।

— निरञ्जन ! क्रोधः सर्वनाशमूलम् । त्वं न जानासि यत्किंयदशोभनं वक्षि ! राजमणिस्सकम्रस्वरमभणत् ।

—अशोभनं वच्मि ? राजमणे ! मित्रमसि, बन्धुरसि, बालसहाध्याय्यसि, कन्यायाश्च मम श्वसुरो भविष्यन्नसीति धियैव साम्प्रतं यावत्सोजन्यं निर्व्यूढम्मया । परन्तु तत्सर्वं त्वया त्वदुद्धतपुत्रेण च विनष्टम् । सम्प्रति द्रक्ष्यसि, कियदशोभनमाचरितुं शक्नोम्यहम् । यदि युष्मान् सर्वान् न्यायालयप्रकोष्ठे नानीतवान् तर्हि धिङ् मामकीं वाक्कीलवृत्तिम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आरभटीं वृत्तिं नाटयन् गतो निरञ्जनः। सायन्तने काले सकलमपि वृत्तं प्रवीनः शुश्राव स्वसृभ्यां जनन्या मातामह्या च। निरञ्जनदुर्व्यवहारं निशम्य तन्मुखभञ्जनार्थमसौ सद्य एवोद्यतो बभूव। परन्तु सर्वेऽपि कुटुम्बिनस्तं वारयामासुः। राजमणिरपि तावता कालेन कार्यालयादुपावृत्तः। विस्तृता चर्चाऽभूत्। अन्ते च राजमणिः पुत्रमवोचत्।

—वत्स प्रवीन! निरञ्जनमहं साधु जानामि। बाल्यकालादेवासौ शठवृत्तिर्दुष्कर्मपरायणश्च वर्तते। तस्य कियन्त्येव पापानि नृशंसकर्माणि च ख्यातानि वर्तन्ते ग्रामग्रामटिकासु। द्वित्राण्यहमपि जानामि।

सौभाग्यं दुर्भाग्यं वा कथय। स्वभावानुकूलामेव वृत्तिमुपगतोऽसौ। पिशाचग्रस्तोऽयं जीवोऽनेहसि यः प्राड्विवाकपदवाच्यः। नायं सज्जनो न च सौजन्यं पश्यति। यद्यस्याधीशिन्यपि व्यवहारार्थिनी स्यात्तर्हि स्वविजयनिमित्तमयं तामपि सर्वजनसमक्षं नग्नां कर्तुं शक्नोति। सत्यवाचोऽप्यसत्यं भाषयति। सुजनादपि दौर्जन्यमाचारयति। यथाऽस्य हृदयं पापकालुष्ययुक्तं मन्ये तदेव प्रमाणीकर्तुं कृष्णवर्णं कञ्चुकमपि परिधत्ते। यदि नाम भारते वाक्कीलवृत्तिर्निरुद्धा स्यात्तर्हि निश्चप्रचमेव समाजो निष्प्रत्यवायो निष्कलहो निर्वैरः स्वर्गोपमश्च भवेत्। गता गौराङ्गाः। परन्तु पापस्मृतिं स्वामत्रैव मुक्तवन्तः। सैव पापवृत्तिरियं वाक्कीलवृत्तिः। पशुमपि वरम्मन्ये वत्स! न पुनः प्राड्विवाकम्।

—तात! किम्मया करणीयम्? अपृच्छत् प्रवीनः।

—पश्य वत्स! सोमा त्वञ्चोभावेव वयस्कौ। अतएव यावत्केनचिद्व्याजेन निरञ्जनस्सन्दर्भमिमं न्यायालयविषयीकुर्यात्तत्पूर्वमेव सोमां सौभाग्यवतीं विधेहि। मन्ये श्वस्तने सायंकाल एव मङ्गलकार्यमिदं सम्पादनीयम्। तद् गच्छ। सोमापितरौ ज्ञापय। अहमपि विवाहं विधिसम्मतरीत्या पञ्जीकर्तुं यथोचितानुपायान् निर्वहामि। विवाहे सम्पन्ने सति निरञ्जनोत्थापितां वात्यामपि द्रक्ष्यामि।

उदारचरितस्य वात्सल्यपारिजातकल्पस्य पितुश्चरणधूलिं ललाटे निधाय प्रवीनस्सोमागृहमाससाद। इतश्च राजमणिरपि सर्वं प्रबन्धं विदधे। उत्तरेद्युरेव न्यायाधीशसमक्षं ज्ञातिजनसाक्षिकं पाणिग्रहणं सोमाप्रवीनयोः सम्पन्नमभूत्। संक्षिप्तेऽपि वरवध्वभिनन्दनमहोत्सवे शतमिताः प्रतिवेशिनः प्राध्यापकाः सोमासहपाठिनश्च सम्मिलिता अभूवन्। सर्वेऽपि प्रवीनसङ्कल्पं तत्पितुरौदार्यञ्च भूरिभूरि प्रशशंसुर्निरञ्जनं पुनर्धिक्चक्रुः।

सोमा गृहवधू जाता। पितामही श्वश्रूर्ननान्दरौ श्वसुरश्चेति सर्वेऽपि चिरसंस्तुता आसन्। मातृगृहादप्यधिकं ममत्वं समवाप सोमा। नन्दनवनमिव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जातं प्रवीनपारिजातं तस्या जीवनम्। निखिलेऽपि नगरे विशेषेण प्रबुद्धसमुदाये विवाहोऽयं चर्चितोऽभूत्।

शान्ते सुस्थिरेऽप्यस्मिन् सलिलप्रवाहे निरञ्जनो जिह्मगत्या भ्राम्यन् जलौकसां चरितं सत्यापयन्नासीत्। तद्दुस्सङ्कल्पगोमयोर्वरकसंवर्धितो विषद्रुमोऽन्ते पुफुल्ल पफाल च।

कतिपयदिवसानन्तरमेव पञ्चसंख्याकानि वादसूचनापत्राणि न्यायालयेन सम्प्रेषितानि सोमाप्रवीनराजमणिमहेश्वरमुन्नीबाईकृते। प्रभूतं यौतकधनराशिमादाय वाग्दत्तां ममात्मजां प्रदार्य राजमणिः स्वपुत्रं सम्पत्तिलोभात्क्वचिदन्यत्र व्यवाहयन्मम च प्रतिष्ठां खलीचकारेति निरञ्जनस्य मिथ्यामानहानिवादो न्यायालये पञ्जीकृतः। सर्वे च प्रतिवादिनस्तिथिसमयसङ्केतपुरस्सरं सूचिताः।

वादोपस्थापनतिथेः प्रागेव कस्मिंश्चित्सायंकाले निरञ्जनो मुन्नीबाईं महेश्वरञ्च सन्तर्जयितुकामो द्वित्रैर्ललाटिकैस्साधं तद्गृहमाससाद। ताड्यमानं द्वार यावदेव मुन्नीबाई प्रोद्घाटितवती तावदेव दृष्ट्वा निरञ्जनं विद्युत्तरङ्ग इव तत्कलेवरे दधाव। आसीच्च तस्या मनसि—हन्त! पूर्वदृष्ट इवायं जनः प्रतिभाति। क्व नु खलु मया दृष्टस्स्यात्?

इत्येवं चिन्तयन्त्यामेव तस्यां निरञ्जनोऽवादीत्।

—भवत्येव मुन्नीबाई?

—युक्तमाह भवान्। आस्यतां तावत्। भवान् कुतःसमायातः? किम्मया भवतः प्रयोजनम्?

—नाहमिहोपवेष्टुमागतः। अहमस्मि निरञ्जनः न्यायालयेऽधिवक्ता। वादसूचना भवत्याऽधिगता न वा? सोल्लुण्ठमवादीन्निरञ्जनः।

तावता कालेनैव मुन्नीबाई निरञ्जनस्य वाममणिबन्धे चिक्कणव्रणाङ्कं दृष्ट्वा तं सहसैव प्रत्यभिज्ञातवती। तस्या मुखान्निरञ्जनस्य सुप्रचिलतं कुटुम्बनाम रज्जन इति दुर्वारगत्योद्गान्तप्रायमासीत्। परन्तु साऽऽत्मानं नियन्त्रितवती नाट्यभङ्गभयात्। क्षणमात्रेणैव मुन्नीबाई सर्वं स्मृतवती—रज्जनस्य गृहे कथमसौ सेवावृत्तिं चकार, कथं सा रज्जनस्य मसृणमसृणैः प्रणयोदगारैर्वशीकृता तद्भोगलिप्सायाः पात्रताङ्गता, कथं गर्भवतीं तामादाय तज्जननी हीराबाई रज्जनगृहमुपेतुं सञ्चक्लृपे, कथं रज्जनस्तद्वृत्तं निशम्य प्रभूतमुत्कोचं प्रदाय मुन्नीबाईमपहारितवान् कथं ते राक्षसास्तां श्वासप्रणालिकानिष्पीडनैर्मारितवन्तो मृताञ्च तां साध्ववगत्य पार्श्ववर्तिन्यां नद्यां चिक्षिपुः कथञ्च सा वस्त्रक्षालकैः रजकैरवशिष्टप्राणा सरक्षिता, कथञ्चान्ते गर्भपातानन्तरं ग्रामोपात्तेन महेश्वरेण सहधर्मचरणाय साग्रहं ससान्त्वनं प्रार्थिता तेन सह इलाहाबादनगरमागता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पृथुमौक्तिकाकारा अश्रुबिन्दवो मुन्नीबाय्या नयनाभ्यां न्यपतन्। क्रोधोद्धुरा कालभुजगीव सा विषमूर्च्छिता जाता। किमसौ स्वविपत्तिकारणं नरपिशाचं गृहाभ्यन्तरे व्याजेन समाहूय निशितकृपाण्या पशुमारं मारयेत्? न खलु। बहिरस्य सहायकैर्भवितव्यम्। द्वेषोपेक्षावशादसौ तन्मुखोपरि टेष्ठिविषतिस्म! आसीच्च तस्याश्चेतसि—सारमेयमिमं मध्येन्यायालयं नग्नं करिष्यामि येन समाजे न जीवितुं न वा मर्तुं शक्नुयात्।

मुन्नीबाईमश्रुक्लिन्नां दृष्ट्वा निरञ्जनः स्वविजयमाशशंसे। मन्निर्भर्त्सनाद्भीतेयमित्यपि मेने। वाण्यां मधु मेलयन्नसौ पुनर्जगाद—मुन्नीबाइ! अलं रोदनेन! मन्ये त्वत्कन्यां यथाकथञ्चित्प्रलोभ्य प्रवीनः परिणिनाय। अहमिव त्वमपि तेन लम्पटेन विप्रलब्धासि। यदि त्वं मत्साहाय्यं कुरु तान् सर्वान् कारागारे प्रेषयितुं क्षमोऽहम्।

—खण्डितवृत्त! नीच! अपेहि तावत्। मदश्रुकारणं त्वं न्यायालय एव ज्ञास्यसि! त्वां सम्यग्जानामि। आत्मानमपि प्रत्यभिज्ञापयिष्यामि। मत्कन्या प्रवीनेन सह सर्वथा सुखसौभाग्यसम्पन्ना वर्तते। परन्तु त्वमेव राहुभूतोऽसि तत्सौख्यकौमुद्याः कृते। गच्छसि न वा? प्रतिवेशिनस्तावदाह्वयानि? शीर्षे एकोऽपि वालस्ते नावशिष्टो भविष्यति। चेतितव्यं त्वया.....परुषाक्षरैर्निरञ्जनं भर्त्सयमाना मुन्नीबाई कपाटौ पिदधे।

निष्प्रभो मूढश्च जातो निरञ्जनो मुन्नीबाय्याः साहसं प्रत्यक्षं निरीक्ष्य। हृदये निखातखड्ग इव, नयनयोः प्रक्षिप्तविषचूर्ण इव, मुखे विलिप्तकज्जल इव कर्णयोः प्रत्युप्तधिग्धिग्ध्वनिरिवासौ यथाकथञ्चिदुपावृत्तो गृहम्।

कथाया अन्तिमं दृश्यम्। निरन्तरालमासीदद्य न्यायालयसत्रस्थानम्। न्यायाधीशो यथाकालमागत्य स्वासन्दिकामलञ्चकार। वाद उपस्थापितः। स्वपक्षान्निरञ्जनः स्वयमेव वादव्याख्यानं प्रतुष्टाव। राजमणिपक्षाच्चापि प्रख्यातो वाक्कीलो वादव्याख्याता नियुक्त आसीत्। मासं यावत् वादः प्रवर्तमान आसीत्। समेषां पक्षविपक्षसाक्षिणां वक्तव्यान्यपि प्रस्तुतानि। अक्षरचुञ्चवोऽत्रिरतलेखनादुद्विग्नाः। परन्तु राजमणेर्निरञ्जनात् पुत्रविवाहार्थं प्रभूतयौतकधनराशिग्रहणप्रसङ्गः कथमपि सिद्धो नाभूत्। प्रायेण सर्वे आशंसमानास्तस्थुर्यन्निरञ्जनः पराजयवेदनां सहिष्यते। अवसिता निखिला वादप्रक्रिया। न्यायाधीश उत्तरेद्युरेव निर्णयतिथिं घोषयितुमादिदेश।

उत्थितप्रायमासीद् व्यवहारसत्रम्। तावदेव मुन्नीबाई समुत्थाय सप्रणाममुद्रं न्यायाधीशं प्रार्थयामास—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीमन् ? अहमपि वादिनं निरञ्जनमहाभागं कांश्चन प्रश्नान् प्रष्टुमिच्छामि । एषां प्रश्नानां प्रत्यक्षसम्बन्धो वर्तते वादेन सार्धम् ।

न्यायाधीशः साश्चर्यं सस्मितञ्च मुन्नीबाईमपश्यत् । सर्वेऽपि व्यवहारसत्रप्रेक्षकास्तस्याः साहसमवलोक्य विस्मिताः । महेश्वरोऽपि नावेत् किञ्चित् ।

—निरञ्जनः साक्ष्यप्रकोष्ठ आनीयताम् । आदिदेश न्यायाधीशः । ततश्चः शपथप्रक्रिया सम्पादिता । क्षणेनैव सर्वं सम्पन्नम् ।

—श्रीमद्भगवद्गीतोपरि हस्तं निधाय वग्धि—यत्किञ्चिदपि वक्ष्यामि सत्यं वक्ष्यामि । सत्यादृते नान्यत् किञ्चिद् वक्ष्यामि । न्यायालयप्रवाचको व्याजहार । निरञ्जनोऽपि जीवने सर्वप्रथमं साक्ष्यप्रकोष्ठे स्थित्वा शपथञ्चकार । ततश्च न्यायाधीशो मुन्नीबाईं पृच्छां प्रस्तोतुं समचिकेतत् । मुन्नीबाईं किञ्चिदग्रे समुपससार पप्रच्छ च— रज्जनबाबो !.....

इत्यर्धोक्त एव स्वकीयं कुटुम्बप्रचलितं शैशवकालिकं नाम श्रुत्वा निरञ्जनो विस्मयमाततान । तस्य मुखात्स्वीकरणात्मिका हुङ्कृतिर्निर्गता । पुनरप्यपावबहितोभवत् । मुन्नीबाई व्याजहार –

—अलं विस्मयेन । भवान् रज्जनबाबुर्नवेतिमात्रं वक्तव्यम् ।

—आम् । अ अ ...अहमस्मि रज्जनः । परन्तु त्वं कथं जानासि ? कुटुम्बिभिः प्रदत्तं शैशवोचितमिदं ममाभिधानम् । पत्नीं विहाय न कोऽप्यपरो नगरेऽस्मिन् ममेदं नाम जानाति । समुद्विग्नो निरञ्जनो ललाप ।

—साधु साधु ! एतावदेव सत्यं भवन्मुखाज्ज्ञेयमासीत् । श्रीमन् न्यायाधिपते ! कृपया तथ्यमिदं लिखन्तु भवन्तो यदयं जनो बाल्यकाले स्वग्रामे रज्जननाम्ना ख्यात आसीत् । अस्य तन्नाम केवलमस्य पत्नी जानाति नगरेऽस्मिन् । परन्तु सम्यगहमपि जानामि इति महदाश्चर्यम् । अनेन एवदुक्तं भवति यन्ममाऽयं पूर्वपरिचितो जनः । सम्प्रत्येकमेवापरं प्रश्नं विधाय स्ववाचिकमुपस्थापयिष्यामि ।

— रज्जनबाबो ! कृपया कञ्चुकमपनीय स्वकीयं वाममणिबन्धं मां दर्शय ।

—किमिदं नाम ? स्वामिन् न्यायाधिपते ! पुंश्चलीयं स्त्री द्वेषवशान्मध्येजनसमवायं मां न्यक्कर्तुमिच्छति । मम वाममणिबन्धेन सह वादस्य कः सम्बन्धः ? चक्रन्द निरञ्जनः ।

—अस्ति । सम्बन्धो वरीवर्ति रज्जनबाबो ! त्वां सम्यक् प्रत्यभिजाने त्वञ्च मामितिमात्रं प्रमाणीकर्तुं वाममणिबन्धं दर्शयितुमाग्रहः क्रियते । यतो हि तत्र वर्तते तव चिक्कणव्रणाङ्को यस्योपचारस्तव प्रणयिन्या श्यामया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृत आसीत् । सा श्यामाऽहमेवास्मि या त्वत्पुरतस्तिष्ठामि । दर्शय सव्य-बाहुम् !

हतप्रभो निरञ्जनः कञ्चुकं व्यपनीय मणिबन्धं न्यायाधीशं प्रादर्शयत् । सत्यमेव तत्रासीत् पृथुलो मसृणश्च कश्चिद् व्रणाङ्कः । निखिलमपि व्यवहारसत्रसदनं विस्मयविमुग्धं जातम् । अव्यक्तास्फुटवार्ताध्वनयः स्फारीभूताः । सर्वत्रापि कोलाहल इव समजनि ।

—रञ्जनबाबो ! केयमासीच्छ्यामा ?

—सा मम ग्रामस्थे गृहे सेविकाऽऽसीत् । परन्तु सा तु विंशतिवर्षपूर्वमेव मृता !

– मृता, त्वया मारिता वा ? रञ्जनबाबो ! न्यायमन्दिरमिदम् । अत्र त्वं श्रीमद्भगवद्गीतया शपथं कृतवानसि सत्यमात्रं वक्तुम् । पापदुराचारषड्-यन्त्रसङ्कुले तव जीवने तु श्यामा त्वत्प्रणयिनी गृहसेविकाऽवश्यमेव मृता परन्तु संसारे सा श्यामेदानीमपि जीवति । श्यामासावहमेव रञ्जनबाबो ! साधु पश्य माम् । ब्रूहि साम्प्रतम् । श्यामाविषयिणीं स्वपापापराधकथां त्वमेव न्यायालये श्रावयिष्यसि यद्वाऽहमेव ?

सम्प्रति निरञ्जनस्सर्वं स्मृतवान् । परन्तु स्वमुखादेव कथं स्वनृशंसाचरणं न्यायात्स्वीकुर्याद्वा ? सकृत्तुनः स्वानभिज्ञतां प्रकटयन्निरञ्जनोऽवदत्—

श्यामाऽऽसीन्मम गृहसेविका । परन्तु तया सहासीन्मम प्रणयसम्बन्ध इति मिथ्याधिक्षेपमात्रम् । अध्ययननिमित्तमहं नितरामिलाहाबादमध्यवसम् । तर्हि कथमहं वक्तुं शक्नोमि यत्कियत्कालपर्यन्तं सा मम गृहे वृत्तिं कृत-वती, कथं केन कारणेन कदा वा निष्कासिता, कुत्र गता किमभवद्वा तस्याः ? स्वामिन् न्यायाधिपते ! व्यर्थमेवाहं सर्वजनसमक्षमपमन्येऽनया महिलया !

—न्यायाधिपते ! कलङ्कितात्मा हीनसत्त्वोऽयं जनो न खलु स्वापराधं सरलतयाऽङ्गीकरिष्यति । अतएवाहमेव परमेश्वरं परमेश्वरविग्रहं भवन्तञ्च प्रमाणीकृत्य सत्यमुद्घाटयामि । श्रुत्वा भवन्त एव प्रमाणम् ।

अहमस्मि श्यामा । मुन्नीबाई मम साम्प्रतिकं नाम । मम जननी हीरा मां सप्रणयं मुन्नीति सम्बोधितवती । वाराणसीजनपदस्य तियराग्रामे विधवा जननी मम मया सार्धं न्यवसत् । पञ्चमकक्षापर्यन्तं मयाऽध्ययनं कृतम् । पठनं लेखनञ्च सम्यग् जानामि । स्कन्धहारवंशोत्पन्नाऽहम् ।

चतुर्विंशतिवर्षपूर्ववर्तिनीयं घटना । तदाऽहमेकविंशतिवर्षदेशीयाऽऽसम् । भग-वता रूपसौन्दर्याभ्यां कृतार्थीकृताऽहं स्वमातुश्चिन्ताकारणं जाता । भोजनोपायोऽपि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नासीत् । मत्प्रतिवेशस्थः कश्चित्सजातीयो युवको निरञ्जनगृहे पूर्वत एव सेवावृत्तिं चकार । स एव मम गृहदुर्व्यवस्थामवलोक्य मामपि तत्रानयत् । अहं प्रायेण निरञ्जनस्य रुग्णां जननीं परिचरन्ती स्थिता । सर्वमासीदनुकूलम् । परन्तु तावदेवास्य लम्पटस्य दृष्टिर्मयि पतिता ।

यथा यथाहमात्मानमस्य दृष्टेर्वारयितुं प्रयत्नानकार्षं तथा तथैवायं येन केनाप्युपायेन व्याजेन च मामेकान्तेऽनुकूलयितुं प्रयतितवान् । बहुशोऽनेन मां प्रति स्वानुरागोऽभिव्यक्तः । पितरं जननीञ्च प्रसाद्य मां निजार्धाङ्गिनीमपि विधातुं प्रतिजज्ञे । ततश्च प्रणयप्रस्तावे मयाऽनङ्गीकृते सति विषं भुङ्क्त्वा प्राणानपि त्यक्तुमवोचत् । तत्श्रुत्वा भीताऽहम् । निमगदिव सरलहृदयाऽहमस्य प्रणयं यथार्थं मत्वाऽऽत्मानमस्मै समर्पितवती । सर्वमिदमस्यैव गृहे मासान् यावत् प्रववृते ।

परन्तु व्यतीत एव तृतीये मासे यदा मम कलेवरे गर्भलक्षणं सुस्पष्टं जातं तदा लक्षितवती मम जननी । सनिर्भर्त्सनं सपरिणतिख्यापनं जनन्या पृष्टाऽहं साश्रुपातं निखिलमपि वृत्तं यथाघटितमख्याम् । तत्श्रुत्वैव जननी मम विदलितफणा नागीव क्रोधान्धा जाता । मद्द्वितीयासौ अनुजुरेव स्वव्यथां निरञ्जनपितृभ्यां निवेदयितुं तद्गृहमाससाद । परन्तु गृहाभ्यन्तरप्रवेशात्प्रागेवावां नरपिशाचेनानेन सन्दृष्टे । ततश्च.....

मुन्नीबाई नाग्रे किञ्चिदाख्यातुं शशाक । प्रभूतकालं यावत्सहिक्कं सकण्ठावरोधं करुणकरुणं परिदेवमानाऽऽसाम्बभूव । सर्वाः स्त्रियः सहृदयपुरुषाश्च सान्द्राश्रुतति न्यपातयन् । सोमाऽपि व्यथार्दिता सती प्रवोनस्कन्धे शीर्षं निधाय गाढं रुरोद ।

न्यायाधीशस्तु उच्चन्यायालयाधिवक्तुश्चरितं श्रावं श्रावं जडीभवन्नासीत् । आसीच्च तस्य चेतसि—हन्त ! ईदृशा एव मायाविनश्शठाः प्रतिदिनं न्यायालये न्यायं याचन्ते ? आगुल्फं कर्दमावसक्ता रञ्जितशृगाला वाक्कीलाख्या इमेऽन्यानुपदिशन्ति ? स्वयमेव पुनस्ते सीतापहारका रावणाः द्रौपदीवस्त्रहरा दुश्शासनाः लोकशातनपरा वेनकंसकल्माषपादाश्च ! भवतु, कथेयं समाप्तिं यावत् श्रोतव्यैव । हृदयविद्राविणीदृशी घटना न मया प्राक् कर्णपथातिथीकृता । हन्त ! चतुर्विंशतिवर्षपूर्वघटितस्य पापप्रकरणस्य जवनिकेदानीं प्रोद्घाटिता ? सर्वथा नियतिर्बलीयसी ।

ततश्च प्रोवाच न्यायाधीशः सदयम्—मुन्नीबाइ ! धैर्यमवलम्ब्य वक्तव्यं पूरय । समापनं यावदुदन्तमिममनाकर्ण्य न्यायालयोऽयं न किञ्चिदपि निर्णेतुं शक्नुयात् । व्यथां नियम्य मुन्नीबाई पुनरवादीत्—

ततश्चानेन प्रोत्साहिताः केचनास्य पिण्डपुष्टाः प्रकृत्यैव दुर्मर्षणाः सहायका मम स्थविरां जननीं कपाटौ पिधाय मुष्टिभिर्लगुडैश्च मत्समक्षमेव भृशं ताडया-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मासुः । सा मूर्च्छिता जाता । तदनन्तरं चेष्टमानाया ममापि मुखगह्वरे कर्पटमापूर्य निरञ्जनमंत्रणामक्तास्तदाज्ञावशानुवर्तिनस्त एव धनक्रीता नृशंसा दृढमुष्टिनिष्पीडनैः कण्ठप्रणालिकामय च ग्रीवाम्मेऽचकण्डन्त । अस्यैव राक्षसस्यांशोऽनुरागप्रमाणभूतो मम गर्भे आसीत्तथापि मां हन्यमानां पश्यन्नपि निष्करुणोऽननुकम्प एवासीदयं नरपशुः । ततः परं किमभूदिति नाहं जाने ।

यदाऽचेतिषं तदाऽहमसमयगर्भपातवेदनया प्रविद्धासम् । वधिका मां मृतामवगम्य नद्यां प्रचिक्षिपुः । परन्त्ववशिष्टप्राणाहं यथाकथञ्चित् वस्त्रक्षालनार्थमागतेन रजकपरिवारेण प्राप्ता । त एव मां स्वगृहं नीतवन्तः । प्रभूताघातवशान्मम त्रैमासको गर्भः प्रचस्खाल । पृष्टा सती सर्वमपि दुःखं रजकदम्पतीभ्यां निवेदितवती । परन्तु प्राणसङ्कटभयात्पुनः स्वग्रामं न गतवती ।

एवमेव पञ्चषाणि दिनानि व्यतीतानि । तावदेव केनचित्प्रसङ्गेन तस्मिन् ग्रामे समागतो महेश्वर उत्कण्ठावशान्मां द्रष्टुं रजकगृहमागतवान् । मां सकुन्निर्व्यूढगर्भां स्कन्धहारकुलोत्पन्नां ज्ञात्वापि दयमानोऽयं सद्धर्मचरणाय मत्पाणी ययाचे । ततश्च रजकपत्न्या मातृकल्पाया पौनःपुन्यानुरोधवशादहं महेश्वरेण सार्धं नगरमागता । पश्चाच्च महेश्वर एव यथाकथञ्चिदन्विष्य वृद्धां मम जननीमपि नगरमानिनाय । साम्प्रतं सुखिनो वयम् ।

भर्तः न्यायाधिपते ! इयमस्ति मदीया कथा । यद्यहं प्रागेव दिवङ्गताऽभविष्यं तर्हि निश्चप्रचं पापकथाऽस्य नरपशोः श्रुतिविषयतां लोकस्य नागमिष्यत् । एकतोऽयं महेश्वरो यो मां गङ्गामिव परिपूतां मत्वा स्वगृहिणीञ्चकार । मह्यं वधूजनोचितां प्रतिष्ठामददात् । मौरञ्जिको वा स्यान्मार्दङ्गिको वा । ब्राह्मणो वा स्याच्चाण्डालो वा । परन्तु ममायं स्वामी, ममायं प्रीततमः पूज्यतमो देवाधिदेवः । अनेनैव सन्ततिमती सौभाग्यवती चास्मि ।

अ।रतश्चायं चञ्चाकल्पो नरपशुर्यं आत्मानं प्राड्विवाकोत्तमं मन्यते । समाजे न्यायालये च महतीं ख्यातिं समृद्धिञ्च भजते ! परन्तु चञ्चायं चञ्चा !! यथा पशुपक्षिभयनार्थं कृषका मध्येक्षेत्रं क्षेत्रपुरुषीकृत्य चञ्चां स्थापयन्ति तथैवायमपि । परन्तु यथा यथा चञ्चाया निष्प्राणता स्फारीभवति पशुपक्षिणां सन्त्रासोऽपि विनश्यति ।

स्वामिन् न्यायाधीश ! ममापि भयमस्माद्दिनीं विनष्टम् । अहमिव न जाने कियत्यो बालिका अनेन कामकीटेन धर्षिताः स्युः । नराधमोऽयं, वधिकोऽयं, भूतलकलङ्कोऽयं श्रीमन् ! श्यामाया निहन्ताऽयं श्रीमन् ! मिथ्यामानहानिवादं प्रस्तौति प्रणालीकीटोऽयम् ? अपरेषां कियन्तं मानमयं बभार ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्यायाधिपते ! पश्यतु भवान् प्रणयपत्रमिदं यदनेन मह्यं प्रदत्तमासीत् । इदञ्चास्ति रञ्जननामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं यदनेन पाणिग्रहणशपथपूर्वकं ममाङ्गुल्यामारोह्य मत्कौमार्यं खण्डितम् ! जाल्मोऽयं श्रीमन् ! अद्य चतुर्विंशतिवर्षानन्तरं स्वहत्यापराधार्थं व्यभिचारिणमिमं निरञ्जनं निर्भरं दण्डयितुमहं भवन्तं प्रार्थये ।

एवमुक्त्वा मुन्नीबाई यावदेव प्रणयपत्रमङ्गुलीयकञ्च न्यायाधीशाय समर्पयितुं तमुपससार तावदेव विमूर्च्छ्य भूमौ पपात । न्यायाधीशस्तत्कालमेव निरञ्जनं हस्तनिगडेनाबन्धुं रक्षिणः समादिदेश न्यायालयप्रक्रियाञ्च तत्रैव स्थगयाञ्चकार ।

ततः परं किमासीत् ? अघोषितोऽपि निर्णयस्सर्वैः ज्ञात एव । चतुर्विंशतिवर्षानन्तरमपि मुन्नीबाई न्यायमवाप ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महानगरी

महानगरीति वाराणसीबम्बईमार्गे प्रत्यहं प्रतिष्ठमानाया अयष्पथगन्त्र्याः[1] प्रथितं नाम। गन्त्रीयं मध्येमार्गम् इलाहाबादमतनाकटनीजबलपुरनरसिंहपुरखण्ड-वेटारसीभुसावलनासिकेगतपुरीकल्याणादिविश्रमस्थानानि[2] संस्पृशन्ती महानगरीं बम्बईमासादयति। अस्यैव मासस्य प्रथमसप्ताहे कतिचिद् दिनानि मध्येवयस्य-निकरमतिवाह्य बम्बईतस्तीर्थपतिं प्रत्यागन्तुकामोऽहं लौहपथगन्त्रीमिमामारूढोऽस्मि।

विक्टोरियाटर्मिनसाख्याद् विश्रमस्थानाद् गन्त्रीयं प्रायेण मध्येनिशीथं प्रतिष्ठंते। स्वानुजेनानुगतोऽहं यदा मलाडतश्चर्चगेटं यावच्चर्चगेटाच्च विक्टोरिया-टर्मिनस यावदागतवान् तदा गन्त्रीप्रस्थाने दशनिमेषा एव शेषा आसन्। तथाऽपि गन्त्र्यां प्रागेव शायिकाऽऽरक्षणवशान्नासीत्कोऽप्युद्वेगो मच्चेतसि। द्वित्रैरेव क्षणै-रभीष्टं प्रकोष्ठं, प्रकोष्ठगां शायिकाञ्चावाप्य निसर्गनिर्बन्धसञ्जातं यत्किञ्चिदप्य-वशिष्टं सङ्कमुक्तत्वं मेऽपगतम्।

विचित्रमासीद्विश्रमस्थानदृश्यम्। क्वचित् पतिगृहं प्रतिस्थास्यमानानां दुहितृजनानां द्विरागमनप्रस्थानकौतुकसम्भारान् सम्यक् सम्पादयितुं प्रचलिता ग्राम-टिकाप्रवासिनः। क्वचिन्नयनहरिणवागुरायमाणां कच्छबहुलाम् अष्टाविंशतिभूमिको-त्तुङ्गवलभीभवनभूषितां मोहमयीं महानगरीं बम्बईमभिलक्ष्यीकर्तुं मध्येऽवकाशं ग्रामाञ्चलेभ्यस्समागतानां कक्षास्वसकृत्कृतार्थीकृतासाफल्यश्रियां पुत्रामनरकपरित्राणै-कफलानां दुर्ललितदारकाणां स्वग्रामान् प्रतिनिवर्तमानानां समवायः। इयं शाटी स्वजनन्यै देया, और्णमिदमर्धबाहुकं बहुशो वनीयकीभूतेभ्यः प्रतिवेशिभ्यः पितृव्य-बदरीनाथेभ्यः[3] समर्पणीयम्, महिषीबन्धनलौहशृङ्खलेयं गृहसेवकाय खेलावनाय[4]

---

१. Train २. Stations ३. नामविशेषः ४. नामविशेषः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दातव्या, बम्बादेव्याः प्रसादमिमं सर्वेभ्यः समर्पय, खादता पिबता च गन्तव्यं, गवाक्षाद्बहिश्शिरो न निस्सारयितव्यं, स्ववस्तुजातं निपुणमवेक्षस्व, केनापि प्रदत्तं किञ्चिदपि मा भुंक्ष्व.....इत्येवमादीनि मंत्रयमाणानां प्रस्थानकालाश्रुततिमलीमसालोकानां पुत्रभ्रात्रीयभागिनेयादिप्रियजनवियोगकातरधियां विसर्जकानां महान् सम्मर्दः सर्वतोऽप्यलक्ष्यत। हुङ्कारचीत्कारटङ्कारादिध्वनिविमिश्रमदो विश्रमस्थानं सन्निपातग्रस्तमिव भासतेस्म।

तावदेव समाचरितचीत्कारा मदोत्कटाऽभ्रमुरिवायष्पथगन्त्री महानगरी शनकैः प्रचचाल। आदौ मन्दं ततश्च क्षिप्रमन्ते च कथाप्रसङ्गोपद्रुता कालसर्पीव प्रभञ्जनगत्याऽसौ धावितुमारेभे। सम्प्रति सहयात्रिणां परस्परपरिचयादानप्रदानक्रमः प्रारब्धः। शायिकानिरीक्षकोऽपि यात्रिणामुपस्थितिं निभालयमानः स्वनियोगमशून्यं चकार।

परन्तु गन्त्र्यारोहणक्षणादेव मम नयने गवाक्षं निकषाधिशायिकं केन्द्रिते। तत्राधश्शायिकायां कश्चित्पुरुषः पत्न्या पुत्रैश्च सार्धं तिष्ठन्नासीत्। उपरि शायिकायाञ्च, सायन्तनकपोतनयना ईषदुन्मीलितमल्लीकुसुमदशना जलदागमशिलीन्ध्रोच्छ्वसिताङ्गी शान्तशान्ता हिमावदाततनुः काऽपि द्वादशवर्षदेशीया बाला ममाभिमुखीभूय दक्षिणपार्श्वेण शयाना समलक्ष्यत। वार्तालापक्रमेणैव पश्चाज् ज्ञातमिदं यदसौ बाला तस्या महिलाया भ्रातृजाऽऽसीत्। सङ्गीतेति तस्या अभिधानमपि श्रुतम्मया।

गृहिण्यः प्रायेण समग्रमपि गार्हस्थ्यं नयन्ति यात्रायाम्। भोजनक्रमे भक्ष्यं लेह्यं चूष्यं पेयं, विविधाः शाकाः अवलेहाः पाचकवटिकादय इति सर्वमपि तासां लघुदीर्घसङ्कीर्णायतपिटकेषु शलाकासमुद्गकेषु वा विविधेषु सुरक्षितं भवत्येव। प्रदर्शनकातरेयं जातिः। सर्वमपि भक्ष्यते न वा। तत् काऽपि समस्या न। वस्तुतो भोजनवैविध्यं पार्श्वस्थैर्लालाक्लिन्नमुखैर्गन्त्रीपथिकैः साभिनिवेशमनिमेषलोचनैर्निपीयेतेतिमात्रमेव तस्य सार्थकत्वम्। यद्भक्षणे शिशुः सर्वथाऽगक्तस्तदपि प्रस्तुवती नारी वस्तुतो घुष्यन्तीव परिलक्ष्यते यथा पश्यत पश्यत रे रथ्याऽहितुण्डकाः एतदपि मयाऽऽनीतम्!!

भवतु। त्रिंशद्वर्षदेशीया गोधूमवर्णाऽसौ ग्रामवधूटी रूपदृष्ट्या सुन्दर्येवाऽसीत्। शीर्षोपरि शाटिकाञ्चलं निधाय प्रान्तभागञ्च तस्य रजतमेखलासंयमितकटिप्रदेशेऽन्तर्विन्यस्य सा निश्चप्रचं यूनां मनांस्याचकर्ष। त्रयस्तस्या दारका आसन्। ज्येष्ठः प्रायेण पञ्चवर्षदेशीयः। मध्यमो द्विवर्षीयः। कनिष्ठश्च मन्ये सप्तमासावस्थः। सा पर्यायेण द्वावपि स्तनपानं कारयन्ती समुद्विग्नाऽऽसीत्। एकस्मिन् स्तनपानं विदधत्यपरो रणाङ्गण आरभटीमिव प्रदर्शयन् सवितण्डं रुरोद। स चाशीद् धुन्धुकारिसन्निभो मध्यमः। तस्मिन् प्रशान्तविक्रमे सति गोकर्ण इव कनिष्ठो जननीसंस्पर्शमात्रेण सम्प्राप्तसर्वस्वः स्मेराननस्सन् तूष्णीमास्थितः। न किञ्चित्स्फुटमस्फुटं वा व्याजहार। केवलं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तिन्तिडीबीजसन्निभनयनतारिकाभ्यां समेषां सद्वर्तिनां मुखानि निभृतनिभृतं पश्यन् स्थितः ।

पतिश्च तस्याश्चतुष्पथबलीवर्द इव निरन्तरं रोमन्थव्यापृत आसीत् । गन्त्री-प्रस्थानसमकालमेव प्रारभत तच्चर्वणक्रमः । कदाचित्ताम्बूलं कदाचिद् द्विदलमुद्गं,[1] कदाचिन् मुद्गफलं[2] कदाचिच्च पानपरागाख्यं सुवासितपूगीफलचूर्णमिति मालाशन-क्रमेण यत्किञ्चिदभ्यश्नन् उत्फुल्लगलोऽसौ तुम्बिकां धमन् जाङ्गलिक इव प्रतीयतेस्म । पत्नीं, त्रिदोषसन्निभान् उत्पातपरायणान् दुष्टदारकान् सान्त्वयितुं विहितप्रयासां दर्शं दर्शमपि गौर्वाहीकोऽसौ न तस्याः साहाय्यं विदधे । सर्वथा सांख्यपुरुष इवात्मानं विनिर्मुक्तमनुभवन् आत्मारामतया स्थित आसीत् । तस्य डौण्डुभीं वृत्तिं दृष्ट्वा सर्वेऽपि यात्रिणः स्मितकटाक्षेङ्गितचेष्टादिभिश्च परस्परं भावयन्तस्तस्मै द्रुह्यन्त इवासन् ।

प्रस्रावक्लिन्नं जातं कनिष्ठदारकस्य कौपीनम् । एतद् विभाव्य महिला स्वभ्रातृजां सम्बोध्य प्रोवाच--सङ्गीते ! देहि वसनान्तरं तावत् । क्लिन्नं जातमेतत् । सम्प्रति उपरिशायिनी बालिका किञ्चिदुच्चचाल । विद्युद्गत्या समुद्गकात् शुष्ककौपीनं निस्सार्य सा पितृष्वस्रे समर्पितवती । महिला वस्त्रान्तरपरिधापनात्प्रागेव सर्षपतैलेन दारकस्याभ्यङ्गं सम्पाद्य, कज्जलौष्ठाच्च[3] तनुकं कज्जलमादाय तस्य नयने तेनाञ्चि-तवती, भालपट्टसव्यांशञ्च दृष्टिदोषादिप्रतिरोधिकज्जललेखया तिलकीकृत्य सस्नेहं तं प्रत्यग्रपयोधिफेनोपमं समुत्थशशकर्णाकृति स्थूलस्थूलमेकमाविकं वानचित्रितं परि-धानं परिधाप्य, तच्छीर्षञ्चापि कौचपकेन समावृतवती । दारकश्शनैः शनैर्द्वित्रा हिक्काः समुत्पाद्य स्नेहाभ्यङ्गसञ्जातसुखः कृत्रिमचूचुकेन गोलादुग्धं[4] पिबन्नेव निर्भरं प्रसुप्तः ।

गन्त्र्यां प्रायेण सर्वेऽपि सुप्ताः । अन्तिमः प्रहरस्तमिस्रायाः प्रारब्धप्राय आसीत् । क इदानीं जिघत्सति ?

खट् खट् खट् खट् खटाखट् खटाखट् खटाखट् खटाखट् खटाखट्..... गन्त्रीगमनध्वनिरकस्मादेव परिवर्तितोऽश्रूयत । उत्कन्धरीभूय गवाक्षादपश्यम् । गन्त्री कस्याश्चिल्लघुवर्षनद्याः सेतुपथमतिक्रममाणा किञ्चिदिव मन्दवेगा सञ्जाताऽसीत् । निर्मुदिरा मुदी नवम्बरमासस्य भग्नभाण्डात्परितो व्याकीर्णा क्षीरधारेव सर्वत्र वित-ताऽसीत् । तस्मिन्निर्व्याजधवलिम्नि स्थिताः क्वचिदाभुग्नशिरसो विन्ध्यगिरिपादाः, क्वचित्सजलजलधरकपिशा नीरन्ध्रवनराजयः, क्वचिच्छान्तनीवृति सेवितपर्णशालो जरठतापस इव विलम्बिकूर्चप्ररोहोऽद्वितीयो न्यग्रोधः, क्वचिच्छस्यश्यामला मालभूमिः,

---

१. दालमूंग इति २. मूंगफली ३. कजरौटा इति भाषायाम् ४. बोतल इति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्वचिदितस्ततो धावन्तो ग्रामसिंहाः, क्वचिन्मृत्तिकानिवेशसंवृतिग्रामिटिका, क्वचिच्च विद्युद्दीपभाभासिताः पण्यवीथय इति सर्वमपि धवलपर्णोपरि रेखाङ्कितं चित्रजातमिव समलक्ष्यत ।

अकस्मादेव त्रुटितो मे विचारप्रवाहः । प्रकृतिदर्शनसञ्जातमनोराज्यविहरणमपहाय याददेव प्रकृतोऽस्मि जातः तावदेव पश्यामि यदुभावेव दम्पती साभिनवेशं भोजनकर्मणि व्यापृतौ । ज्येष्ठो दारक उपरिस्थशयन एव सङ्गीतया सार्धं स्वपितिस्म । वैतण्डिको मध्यमोऽपि मध्येपितृ सुष्वाप । तृतीयश्च जननीक्रोड एव निदिद्रासतिस्म ।

परन्तु किमिदं नाम ? लम्बोदरोऽसौ वृषभो यावच्छक्यं व्यादाय मुखदरीगृहं भक्षयति । सुभगम्मन्या तद्गृहिण्यपि तमेव वृकोदरं संवदति । दारकास्तु प्रागेव पीता भुक्ताः, सम्प्रति निर्विघ्नं स्वपन्ति । परन्तु वराकी बालिकाऽसौ न केनाऽपि पृच्छ्यते ! कस्मात् ? गन्त्र्यारोहणादारभ्येदानीं यावन्न तां किञ्चिदपि भक्षयन्तीं दृष्टवानस्मि । किमसौ न बुभुक्षुः ? किं भक्षितं, किं पीतं तया ? तत्किं क्षुत्क्षामकण्ठ्येव सोषुप्यते ? बुभुक्षिता सत्यपि किमसौ सम्यक् निद्रातुं समर्था ?

इत्येवं चिन्तयत्येव मयि बालिकाऽसौ दीर्घदीर्घतरं निःश्वासमेकं मुमोच । क्व चिन्ताविताना पगतनिद्रयोर्मम नयनयोः सुषुप्सा ? निपुण-निपुणमवेक्षितम्मया । अलीकसुप्तिकामभिनयन्ती सा बाला बाहुलतोपधानरन्ध्रेण स्वपितृष्वसुर्निस्त्रपामाहारक्रीडां पश्यन्ती स्थिताऽऽसीत् ।

सम्प्रति सर्वं सुस्पष्टं जातम् । आसीच्च मे मनसि- अहो ! पराकाष्ठेयं नृशंसतायाः । क्षुत्क्षामकण्ठी शुनी चापि भक्ष्याशया लिलिक्षमानजिह्वान् डिम्भकान् दृष्ट्वैव जठराशयरञ्जितं सर्वमपि खाद्यजातमुद्गिरति । पक्षिणोऽपि शावस्नेहपरायणाः कीटादिकं सम्प्राप्य सर्वथमं चुङ्कृतैरनुगतान् तानेव चञ्चुपुटैर्भोजयन्ति । परन्तु मनुष्योऽयं कियान् शठः, कियान् निर्घृणो हृदयहीनश्च ! अयमोदरिको नितरामेव प्रतिक्षणं खादन्नस्ति । क्षणमात्रमपि यंत्रपरिचालितमिव मुखमस्य न विश्रान्तम् । हविषा कृष्णवर्त्मेव जठरनलोऽस्य विविधभक्ष्यैरपि न शाम्यति । परन्तु सकृदपि नायं चिन्तयति यद् द्वादशवर्षदेशीया सा कन्याऽपि किञ्चिदशनजातं ग्रहीष्यति । अहो धिगिमं स्वार्थान्धम् !

भवतु । उपेक्ष्यतां तावदयं निष्ठुरोऽसाम्प्रतकारी । परन्तु किमुच्यतां तस्या विषये या खल्वस्याः कन्यकायाः पितृष्वसा ? हैयङ्गवीनमसृणहृदया भवति नारीति श्रूयते । परन्तु बृहत्कवलैरश्नन्तीयं हिडिम्बैव न कथं भोजनार्थं तामल्पवयस्कां पुत्रिकाकल्पां बालां पृच्छतिस्म । हन्त भो निसर्गादेव पुनर्नवा भवति बालकानां बुभुक्षा ! नयनतारकायते पितृकृते प्रत्येकं शिशुः । का जननी वात्सल्यमेदुरा सती स्वसन्ततिं प्रतिक्षणं न चिन्तयति ? इयमपि, वृथैव रूपसौन्दर्यगर्वमुद्वहन्ती,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्वासुरीं समृद्धिं भुञ्जाना, स्वापत्यमात्रानुरक्ता मूढा महिला कियल्लालयतिस्म आत्मजातान्। 'सङ्गीते सङ्गीते' इति प्रतिक्षणं स्वाज्ञां प्रचिकटयिषुरियं कतिधा तां वराकीं बालां व्युन्निद्रां न कृतवती ? परन्त्वेतावदेव कथं नानुभूतमनया यत् तच्छरणाऽसौ दारिकाऽपि भोजनाय वनीयकत्वमुपगता स्यात्।

एवमादि चिन्तयतो मेऽक्ष्णोरेव प्रभाता निशा। तावता कालेन गन्त्री भुसावलं प्रत्यासन्नाऽभूत्। प्रायेण सर्वेऽपि यात्रिणः प्रबुबुधिरे। मध्यशायिकां निपात्य सर्वेऽप्यधश्शायिकोपरि निषण्णाः। परन्तु केचन इदानीमपि सुखशयितप्रच्छिकां गृहिणीं प्रतीक्षमाणा इव प्रसुप्ता एव समदृश्यन्त। गन्त्रीप्रकोष्ठस्योभयोः प्रान्तभागयोः महान् यात्रिसम्मर्दः पुञ्जीभूतः। द्वित्रास्तु शौचालयकपाटं संस्पृश्यागन्तुकान् स्वप्रथमप्रवेशाधिकारं सूचयन्त इव, द्वित्रा धूमवर्तिकयोत्पनिष्णुलघुजलधरशकलं विरचयन्तः स्वदुर्वारां व्यथां समुद्घोषयन्त इव, द्वित्राश्च दन्ताधरावकाशे तमालचूर्णं निगृह्य स्वशङ्कुमुखतयाऽन्येभ्यः प्राक्प्रवेशनार्थमवसरं याचमाना इव यत्र तत्र स्थिता आसन्। काश्चन महिलाः पुरुषवर्गं तृणम्मन्यमाना हस्तमुखदन्तादिप्रक्षालनार्थं क्षालनद्रोणीं[1] निकषा तिष्ठन्तिस्म। दुर्ललितदारकाराणां सृणिकादूषिकापनयनोपक्रमेऽसम्यक्प्रयुक्तैः जलैः गन्त्रीप्रकोष्ठभूमिः पिच्छिलाऽसीज्जाता। को नु खलु युध्येत पुंदोषाख्यायिनीभिः कालकूटरसनाभिस्ताभिस्समम्! एवं हि भिन्न एवाहनि पर्याकुल आसीत् कान्तारोद्देश इव महानगरीगन्त्रीप्रकोष्ठः।

सङ्गीतेदानीमपि नप्रबुद्धा न वा प्रबोधिताऽऽसीद् दम्पतीभ्याम्। निर्दोषकन्यापक्षधरोऽहमचिन्तयम्—मन्येऽशनपानक्रमे प्रत्यवायभूतामेव तां बालां मन्यमानाविमौ न तां प्रबोधयितुमुत्सहेते। तथा हि, सर्वेऽपि चायपानं कुर्वन्तिस्म। कनिष्ठो दारकः क्रीडनकैः सान्त्व्यमानः किञ्चिन्मिष्टान्नमश्नन् परमनिर्वृत आसीत्। मुण्डितशिरस्को मध्यमोऽपि तलिच्छके निषद्य पार्ले बिस्कुटस्य' समग्रमपि पिटकं शनैः शनैः रिणक्तिस्म। ज्येष्ठः खलु परमशान्तः कल्यवर्तं परिसमाप्य जनन्या सस्नेहं कङ्कतिकयाऽवलेख्यमानश्चिकुरेषु स्मितानि कुर्वन्नासीत्।

तावदेव विश्रमस्थानं भुसावलमागतम्। चायऽऽ चायऽऽ बटाटाबड़ा..... बटाटाबड़ाऽऽऽऽ....नेस्कॉफीऽऽनेस्काफीऽऽताजाऽऽमरूदऽऽ....ताजाऽऽमरुदिति धाराऽऽसारं पण्यविक्रयाह्वानध्वनिकदम्बकं वर्षद्भिः मध्ये-मध्ये च श्रुतिविवरोच्छेदनकरकापातमपि समाचरद्भिः विश्रमस्थानविक्रेतृभिः समन्ततोऽपि पर्याकुलीकृतं पर्यावरणम्। कः किं विक्रेतुमिच्छतीत्यपि सम्यक्तयाऽवगन्तुं नाशाकि तस्मिन् क्षणे।

प्रायो हि पूर्वाह्णे दशवादनकाले सङ्गीता प्रबुद्धा। प्रेतग्रस्ताया ग्रामवधूट्या इव मूर्द्धजास्तस्या विलम्ब्य पर्याकुलाः सञ्जाताः। अर्धस्फुटितमौक्तिकशुक्तिकोपमे नयने

१. wash Basin.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्या इदानीमपि अभुक्तस्वापशिथिले प्रतीयेतेस्म। इतस्ततो दृष्टिं निक्षिप्य सा शायिकाकोणे निभृतं सकृत् निष्ठ्यूतवती। ततश्च लोलजिह्वया परिशुष्कसूक्किणी नैकधा लिहन्ती सञ्जिहानाऽतिष्ठत्। एतत्सर्वमेवासीत् तदशान्तक्षुल्लक्षणम्।

—'अये सङ्गीते! कथं नोत्तिष्ठसि? मध्याह्नोऽयं शिरस्यारूढः। किं नयने निर्यासंश्लिष्टे? गच्छ हस्तौ मुखं प्रक्षालय।'—महिला प्रावोचत्।

मन्ये, कन्यकाया जागरणवृत्तान्तः पितृष्वस्रा यथाकथञ्चित् आकर्णितः। तस्मादेव निर्देशोऽयं तया तस्यै प्रदत्तः।

प्रभातशैतल्येन पिष्टिकाभूता सङ्गीताऽन्यमनस्कतया लम्बरामपसार्य, चोलञ्च जानुपर्यन्तं विस्तार्य, शायिकातोऽवततार। ततश्च दन्तधावनचूर्णादिकमादाय शौचालयमुपससार।

एतस्मिन्नन्तर एव सूपकारः समागतः। कः कः भोजनं वाञ्छतीति पृच्छन्नसौ मध्येप्रकोष्ठं भ्रमन्नासीत्।

—भो भोजनं कुत्र दास्यसि? पिचण्डिलोऽसौ पप्रच्छ।

—श्रीमन्! जबलपुरकटनीविश्रमस्थानयोर्मध्ये। सोऽवादीत्।

—कतिवादने दास्यसि? महिलाऽपृच्छत्।

—देवि! अष्टवादनात् प्रागेव। सूपकारोऽवदत्।

—भवतु, पिठरद्वयमाहर। पुरुषः प्रोवाच।

—यथाऽऽज्ञापयति श्रीमान्। सूपकारोऽवदत्।

निदेशमवाप्य कर्णजखण्डे च शायिकासंख्यादिकं समुट्टङ्क्य गतः सूपकारः। तावता कालेन सङ्गीताऽपि प्रतिनिवृत्ता। मुखादिकं प्रक्षाल्य सुदीर्घकेशराशिं द्विफालभिन्नां सारयित्वा मुखबालचन्द्रञ्च गन्धद्रव्येण मसृणीकृत्याऽसौ सम्प्रति बलाहकवर्षणक्षालितधूलिराशिर्बालिकमलिनीव प्रसह्य दृष्टिं बध्नन्ती परमां शोभां लावण्यञ्च दधे।

—गृहाण वत्सकं सङ्गीते! त्वदर्थमेव रोदिति।...महिलाऽकथयत् शिशुञ्च भ्रातृजाया उत्सङ्गे कृतवती।

विस्मरणशीला कन्या नवीनेन मनसा स्मितकं विधाय पैतृष्वस्रीयं शिशुभ्रातरं सस्नेहं चुचुम्बालिलिङ्ग च। पश्चात्तमुत्सङ्गे कृतवती।

पितृष्वसा समुद्गकान्निष्कास्य किञ्चिच्छर्करामिश्रितं सक्तुचूर्णं, निशाभक्षणावशिष्टा द्विन्नाः पूरिकाश्च तस्यै दत्तवती। सङ्गीता यावदवाप्तमत्तुमुपचक्रमे। दस्युभूतैरौदरिकडिम्भकैश्चापि मध्ये-मध्ये सङ्गम्पमाहृतं, भुक्तावशिष्टं भक्ष्यजातं सा यथाकथञ्चिदाद। बालक्रीडयाऽनयाऽनुरञ्जितौ दम्पती तूष्णीमास्थाय स्थितौ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शनैः शनैर्जबलपुरमप्यतिक्रान्तम् । गन्त्री होराद्वयेन विलम्बिताऽऽसीत् । यात्राऽप्यवसितप्राया जाता । प्रत्यूषसमायामपि शीतरजन्यां न कोऽपि यात्री सुषुप्सुः समलक्ष्यत । यतो हि प्रयागान्तेवाऽऽसीदनेकेषां यात्रा । अवतितीर्षु-पथिकानां कोलाहलैरवतरणव्यतिकरोद्योगैश्चान्येऽपि यात्रिणः सम्भ्रान्ता इव परिलक्ष्यन्तेस्म ।

सङ्गीता पुनरप्युपरिशय्यामधिरूढा । कनिष्ठो दारकस्तस्याः पार्श्व एव प्रसुप्तः । अयष्पथगन्त्री समगति सिंहोराख्ये विश्रमस्थाने स्थिताऽऽसीत् ।

—कस्मान्निरुद्धाऽत्र ? किमयष्पथो[1] न रिक्तः ?

—विलम्बिताऽपरा महानगरी प्रयागतः समागच्छति ।

—नहि नहि, महानगरी तु जबलपुर एव समतिक्रान्ता ।

—तत्का खल्वियमपरा भविष्यति ?

—हाँवराबाम्बेमेलकस्य समयोऽयम् ।

—साधु साधु, सैव गन्त्री भविष्यति ।

इत्येवं प्रवदत्स्वेव सर्वेषु प्रबलझञ्झावातोत्थं कर्णस्फोटध्वनिं जनयन्ती, महावराहघुर्घुराराववीणामिव वादयन्ती सा गन्त्री निमेषमात्रेणैव समतिक्रान्ता ।

प्रशान्ते च तस्मिन् महाप्रलयोपमे कोलाहले महानगरी पुनस्समार । समा-गतस्सूपकारः । सर्वेऽपि सन्नद्धाः सञ्जाताः । तुन्दिलो गृहपतिस्तदीया गृहिणी च परस्परं सम्मुखीभूय निषण्णौ । दारकाः सर्वेऽपि सुप्ताः । समक्षमेव पिठरौ संस्थाप्यो-भावेव खादितुं प्रवृत्तौ ।

चिन्तितम्मया यदिदानीमवश्यमेव पितृष्वसा ह्यस्तनादेव दिवसान्निर्भोजनां कन्यकां प्रबोध्य भोजयिष्यति । परन्तु विस्मयस्य परां काष्ठामुपरूढोऽहमासं दर्शं दर्शं यदसौ निष्करुणा चटुलजिह्वा द्वितीयरात्रावपि तां दुग्धमुखीं नाऽभोजयत् । केवल-मेकवारमपृच्छत् —

सङ्गीते ! अत्स्यसि किञ्चित् ?

..... सङ्गीता न किञ्चिदुवाच ।

— सङ्गीते ! अत्स्यसि किमपि ? ददानि किञ्चित् ? महिला पुनरपृच्छत् ।

—भो : किं मुधा पृच्छया ? प्रसुप्ता सा । अलं प्रबोधनेन । गृहमागता एव

---

१. Line

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वयम् । भुंक्ष्व त्वरितम् । पिठरो निवर्तयितव्यः..... पतिः प्रोवाच ।

सर्वमवसितमनेनैव भरतवाक्येन । सम्यग्दृष्टम्मया यदप्रसुप्ता द्वादशवर्षीयाऽसौ कन्यका सम्प्रति बाहुभ्यां मुखमाच्छाद्य व्याजेन भोजनपिठरद्वयं पश्यन्ती स्थिता । तस्या मानग्रहिले हृदये कियती व्यथा, कियती करुणा, कियान् निर्बन्धो वेति को नु खलु जानाति ? अन्यदुहिता सा ! तस्या वेदनां तज्जन्मदैव ज्ञातुं शक्नोतिस्म । चिन्तितम्मया यत्कस्माज्जनाः स्वसन्ततिं शुनश्शेपीकृत्यान्येभ्यः समर्पयन्ति !!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकचक्रः

सुभगम्मन्यो धनाढ्यो मुक्तहस्ताभ्यां रुप्यकाणि बण्टयति। परिधान मिष्टान्नं क्रीडनकम् अन्यद्वा किञ्चिदभीष्टं वस्तुजातं क्रीणाति। तन्निगूढसहृदयता लोकसमक्षं स्फारीभवति। परन्तु निर्वाटिकस्य पुनः का कथा? तस्याखिलं धन-कुबेरत्वं दारिद्र्यीभूय क्वचिदन्तरालकोण एव तिष्ठति। प्रयासैरपि बहिरानेतुं स्फारीकर्तुं वा न शक्यते! कियद् विचित्रमिदं रहस्यम्? ज्योत्स्नावदाते दधनि निलीनं नवनीतं को नु खलु पश्यति श्रद्दधाति वा? परन्तु सम्पन्ने सतीषन्मन्थने तदेव श्रद्धेयप्रमेयीभूय स्वास्तित्वं प्रसह्य साधयति। स्वार्थान्धोऽयं लोकः। स्वार्थ-सिद्ध्या सर्वमङ्गीकरोति। स्वार्थविनाशेन च सर्वं तिरस्करोति।

तादृश एवानेहसि जीवितुं विधिनाऽऽदिष्टोऽस्मि। ह्यस्तनो योऽसौ मम कामनासंसारः सर्वैर्निर्भरं व्यलोकि, स एवेदानीं हृदयगह्वरे मदीये क्वचिच्छनकैर्निली-नस्तिष्ठति। जीवनं धारयामि। प्राणाञ्जीवामीति प्रत्ययो लोकस्य! परन्तु सत्य-मवैम्यहमेव। वस्तुतो मृत्युं धारयामि। मृत्युमेव जीवामि! विना सीतादेव्या किन्तु खलु जिजीव दयिताप्राणो रघुनन्दनः? जीवनं मृत्युं वा? हन्त कस्मायाख्येयं सर्वमिदम्?

व्यथाकथेयमहो मामकी पुरावृत्ता
अनिर्व्यथे हि भवे वाचिकं ददे कस्मै?

कियत्स्वरया व्यतीतानि जीवनदिनानि? कृत्रिमपुत्रकपुत्रिकाभिःसार्धं जीवन-घटनाक्रमं विडम्बयन् माणवकः क्वानुभवति दिनमणेरुदयास्ताचलाधिरूढिम्? तत्क्री-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डनार्थं तु द्वादशहोरकोऽपि दिवसो नालं प्रतीयते। कदाचिदेवमपि सम्भवत्येव। विहरणार्थं विहगानामाकाशः पञ्जरायते। विकसनार्थं कैरवाणां निशीथिनी निमेषायते।

ममाप्याकाङ्क्षाणां कृते जीवितायुष्यं क्षुल्लकं जातम्। यदाऽद्य विवृत्य पश्यामि संस्तुतजीवनपथं, संस्मृतिबिन्दुं संस्पृशन्ति सर्वा घटनाः। अकस्मादेवात्मानं कुमारवयसं पश्यामि। यावदुपलब्धैः ग्रामटिकाधूलिधूसरैः परिधानैस्समावृतो यावदुपानतैः जननीकरस्पर्शमधुरैः खाद्यपदार्थैस्सन्तुष्टो यावद्योगक्षेमैश्च निरत्ययं संवर्धितोऽहमासम्।

निसर्गरमणीयोत्कलवसुन्धरा न केषामभिमता? अगाधपयोधिगर्भादुदियाय प्रत्यहं यत्र बालार्कः। उदयतश्च तस्यारुणिमा सागराम्भसि प्रतिबिम्बितो वाडवाग्निविच्छित्तिमुपस्थापयतिस्म। तदद्भुतं प्रकृतिलीलासंविधानकमक्षिलक्ष्यीकर्तुं कदाचिदहमपि वयस्यैस्समं गतोऽस्मि। मेघमेदुरप्रावृषि दूर्वाग्रस्थायिनां ज्योतिरिङ्गणानां ग्रहणप्रयासंश्चपलशशवं क्षपयन्नत्रैव कलिङ्गग्रामे प्रबुद्धोऽस्मि जातः।

सुरभारतीचरणचर्याऽनुलीनो पितृचरणो धीरगम्भीरनिर्वातनीरनिधिस्वभावः प्रकृत्यैव यायावर आसीत्। जीविकार्थं नितरामेव कोसलान् पञ्चालान् दशार्णांश्च परिभ्रमन्नसौ मुरैनाभुवि सूचिताभिलाषः किञ्चित्कालपर्यन्तं पौरजनानुरोधवशात्तत्रैव गीर्वाणवागध्यापनार्थमध्युवास। तातचरणे प्रोषिते सति सन्ततिमात्रजीवनोपाया क्षमाकरुणावात्सल्यपातिव्रतमूर्तिर्जननी पुनरागमनं तस्य प्रतीक्षमाणा दिनान्यनैषीत्। कटाहद्वीपवासिनी महानाविकबुद्धगुप्तस्य विरहविधुरा प्रियेवासौ प्रतोलिकादीपाधारस्तम्भोपरि कटुतैलशिखावलं संस्थाप्य मेषशावकनिर्निमेषनयनाभ्यां चिराय पश्यतिस्म। पितृचरणागमनमुत्प्रेक्षमाणा सा कदाचित्तुलसिकार्च्चनैः कदाचिद्गृहवलभ्यभ्यर्णचरमौकुलिकुलपायसपर्येषणैः कदाचिदागमपिशुनभूतगौमयगौर्युत्थापनैः कदाचिद्विक्काप्रशमनार्थं पितृचरणस्मरणैः कदाचिच्च दैवज्ञोपदिष्टमङ्गलसौवस्तिकैः कालक्षेपं विहितवती।

अकस्मादेव कुटुम्बसुखविलासवनिका विपद्दवाग्निज्वालाऽवलीढा। तमग्निं जननीनयननिर्गताश्रुसन्ततिरपि निर्वापयितुं न शशाक। सुदर्शनो ममाग्रजः प्रथम एव वयसि अनुपरूढयौवनो द्वित्र्यहीनैरातपोल्लङ्घनजतापैः पञ्चत्वमवाप। पुत्रनिधनं श्रुत्वा पितृचरणो द्राग् गृहमुपावृत्तः। बहु बहु प्रबोधयामास जननीम्। शास्त्रोपदेशैः पुराकथाभिर्लोकनिदर्शनैरात्मानुरागोपन्यासैश्च पुत्रवियोगकातरां कुररीकल्पां मातरं परिशमय्य पुनरसौ गन्तुमियेष। संस्कृतशिक्षणसंकल्प आसीत्तस्य ममाग्रजस्य कृते। सम्प्रत्यवस्थान्तरं गते संविधानके स्वसंकल्पनिर्वहणाय तातो मां परिचिचाय।

तातद्वितीयोऽहं मृत्कूटवीथिकाबहुलं करीरनिष्कुटानुस्यूतं द्वितीयमिव दण्डकाख्यं मुरैनाख्यं जनपदमागतः। प्रतिगृहमत्र समर्चित आसीदगस्त्यकल्पः पितृचरणः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वार्जवविनयमण्डितव्यवहारैः गहनवेदवेदाङ्गशास्त्रज्ञानैः लोकपरम्परोन्नयनक्षमैराचरणैश्च ममेषां महद्भ्योऽपि महतां लघुभ्योऽपि लघूनां जनानां मनांस्यावर्जयन्नसौ तत्र प्रतिष्ठायाः परां कोटिमधिरुरोह।

प्रारम्भिकी शिक्षाऽत्रैव मे सम्पन्ना। तातसाहचर्यमेवासीन्मम विद्यालयः। तदाननिर्गतान्येव दीप्तज्ञानाक्षराणि कानिचन मदुर्वरमतिमृत्तिकासु प्राग् बीजीभूय पश्चात्कन्दलितानि। अभ्यानर्षणमिव सञ्जातम्। वल्लकीतन्त्रकल्पा मे प्राक्तनजन्मार्जितविद्यासंस्काराः पितृचरणप्रयत्नस्पर्शैरेव मुखरीभूताः। तातप्रतिबिम्बभूतोऽहं तेनैव सार्धमिन्द्रजालसम्मोहित इव गतागतिं कुर्वन्नासम्। तथापि पृथिव्या गुरुत्वाकर्षणमिव मातुर्वात्सल्यं मां समधिकतरं नितरामाचकर्ष। तातपादो मत्कृते ग्रहगणनिचितोऽनन्तविस्तारः शून्याकाश इवासीद्यत्र कियन्त एव ग्रहपथाः परस्परं संसक्ताः प्रतिपलं संघर्षणभयमुत्पादयामासुः। शून्याकाशे निरवलम्बे पितरि ममाधारोऽपि नासीत्।

परन्तु स्नेहमेदुरा जननी मत्कृते गृहनगरशैलवननदनदीभूधरसागरकृषिभूमिसमन्विता सुदृढावलम्बा भूमिरिवासीत्। मातरमुपेत्याहं वीतचिन्तोऽभवम्। सा निरन्तरमेव मम कोमलान्तःकरणे तिष्ठतिस्म! कदाचित्तस्या एव दुर्वारा स्मृतिः नयनसलिलमुद्गिरन्ती क्लिन्नगात्रं मामेकान्ते विदधे।

उपनयनार्थं तातपादः कलिङ्गान् न्यवर्तत। प्रत्येकं जातकसंस्कारमसौ बन्धुबान्धवोपचिते स्वपैत्रिकगृह एव प्रायेण सम्पादितवान्। गायत्रीमुपदिष्टवान् मामाचार्यप्रवरः। मुण्डितशिरस्क एवाहं कतिपयदिनानन्तरं पित्रा सह सकृत्पुनः दशार्णान् समागतः। मुग्धबोधामरकोषस्तोत्ररत्नाकरभर्तृहरिविदुरचाणक्यशतकादिकं कुशरकल्पं संस्कृतकाव्यरत्नं जनकनिर्दिष्टो यथायथमधीयानोऽहं सर्वप्रथमं सुरभारत्या परिचितोऽभवम्।

कालस्तावदेतस्मिन्नन्तराले पार्श्वपरिवर्तमभ्यस्यन् समलक्ष्यत। पितुरगाधपाण्डित्यमेव तस्य सततचङ्क्रमणकारणमासीत्। महामहोपाध्यायानां गिरिधरशर्मचतुर्वेदानामनुरोधवशात्सहारण्यपुरे वसति प्रपेदे तातपादः। गौरीगुरोरुपत्यकायामवस्थिते कलिन्दजासलिलसिक्ते विभुत्वैश्वर्यमण्डितेऽस्मिन्नगरे संस्कृतमध्यापयन् पितृचरणो बहुवर्षाणि यावदवतस्थे।

तावता कालेनैवापक्षीयमाणे मम कौमारे यौवनं समुज्जृम्भमाणमासीत्। यथा यथा चरणौ मम यौवनदेहल्यभिमुखं प्राग्रसरावभूतां तथा तथा मदर्थं तातस्तदर्थञ्चाहमपरिचित इव सञ्जातः। आवयोरन्तराले कश्चिद् विचित्र एव प्रतिवेशसम्बन्धो विचकास। तातपादोऽकस्मादेव मां ज्येष्ठं समवयस्कं वा मन्यमानः पर्यलक्ष्यत। यथेदानीं स्मरामि तादृक्परिवर्तनं मयि न सञ्जातम्। तथापि विश्वसनीयता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य व्यक्तित्वस्य पूर्ववन्नासीत् । कदाचिदेवमभून्मम मनसि यदबोधशिशुरिव तातोत्सङ्गमधिरुह्य तं निर्भरमुद्वेजयेयम् । किन्त्वेवं कर्तुं नाशाकि । कस्मात् ? स्वशैशवापक्षयवशाद्वा पितृनयनोन्मिषदनामन्त्रणवशाद्वा ? परमार्थतो निश्चेतुं न शक्नोमि । एवं हि व्यतीतप्राये द्वायनानां क्रमे दूराद् दूरतरमुपगताऽऽवयोर्मिथः प्रत्यभिज्ञप्तिः ।

एवंविध एव शिथिलप्रत्यभिज्ञानोपक्रमे दशमद्वादशकक्षे मयोत्तीर्णे । तावता कालेन तातपादः सकृत्पुनर्मुरैनानगरमुपावृत्तः । आगमिष्यति वर्षचतुष्टये गालवपुरवाराणस्योर्निवसता मया स्नातकपरास्नातककक्षे ससम्मानमुत्तीर्णे । परन्त्विमानि दुरुत्तराणि वर्षाण्यासन् जीवनस्य ।

भारतराष्ट्रमिदानीं स्वतन्त्रमासीत् । परन्तु सम्प्राप्तेऽपि शरीरस्वातन्त्र्य आत्मा राष्ट्रस्येदानीमपि पराधीन एवासीत् । मिथ्याजातिवंशाभिमानः अनार्जवशीलतोत्कोचवृत्तिः मनोवाक्कर्मणामसामञ्जस्यं राष्ट्रभक्तम्मन्यानामवसरवादितेति सर्वं प्रत्यक्षं निभाल्य हृदयाकाशम्मेऽनारतमेव वात्याक्रान्तमिव समलक्ष्यत । कदाचिदरोचत जवाहरलालनेहरूः भारतोद्योगतीर्थस्वप्नदर्शी, कदाचिच्चाचार्यनरेन्द्रदेवस्समाजवादं व्याचक्षाणः । साम्यवादस्यापि कतिपयवैशिष्ट्यानि मामभ्यभूवन् । दिग्विरोधिप्रभञ्जनान्दोलितं ध्वजांशुकमिव मनो मे तेषु दिवसेषु नैकप्रख्यं जातम् । क्वचित्प्राचीनं क्वचित्प्रतीचीनम् ! क्वचिदुदीचीनं क्वचिदवाचीनम् ! अहो अनीशोऽहमासं स्वगात्राणां कालावधौ तस्मिन् । मन्मनोमन्थनानुमानेऽसमर्थाः कियन्त एव राजमदोद्धताः कान्यकुब्जेश्वरकल्पा अभिनवबाणभट्टं मां भुजङ्गं ज्ञानलवदुर्विदग्धं निर्बन्धपरायणं दृप्तं वा मन्यमाना अकारणवैरिणः सञ्जाताः । युक्तिभिस्तर्कैश्शास्त्रवचनैर्वा मां सान्त्वयितुमसमर्थास्ते प्रायेण मत्समालोचका अजायन्त ।

परन्तु तावता कालेन मयि समुत्पन्न आसीत्कश्चिन्नवीनो जीवो यस्यासन् स्वोपज्ञाः केचन विचाराः । यस्यासीत् काचिदभिनवा जीवनपद्धतिः । तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणो नासौ क्षारं जलं पातुमियेष । प्राचीने गोलके सम्भूताऽऽसीन्नवीना कापिशायनी वापि ! युगपदेव जीवनद्वयं जीवन्नासमहम् । एकतस्तु वंशसंस्कारास्तातपादेनाहिता अपरतस्तु स्वार्थसिद्ध्याश्रितव्यवस्थाविरोधस्वराः । हृदयेऽमृतं कण्ठे पुनः कालकूटम् ! हृदये करुणार्द्रता नयनयोः पुनर्द्वेषाग्निः ! हन्त विचित्रमेवासीद् द्वैधसम्भिन्नं मम जीवनं तेषु दिनेषु ।

षष्ठदशकं प्रारब्धमासीत् शताब्दस्यास्य । सम्प्रत्यध्यापकोऽहमासं सागरविश्वविद्यालये । अत्रासन् विविधविभागेषु संवादिविसंवादिसंस्कारवन्तो जनाः । ममेवानेकेषां युवाध्यापकानां हृत्सु राष्ट्रदुर्व्यवस्थां समाजस्य चाधरोत्तरत्वं सम्प्रेक्ष्य विचारमन्थनं बद्धमूलमासीत् । प्रायेणाध्यापनानन्तरं वयं सर्वेऽपि व्यवस्थाविरोधिनः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुहृदश्चायपानार्थं प्रक्रान्तविषयचर्चया वा किञ्चित्कालखण्डं क्षपयितुं एकस्मिन् लघुनि मार्जितप्रोञ्छिते खाद्यपेयापणेऽतिष्ठाम । आपणोऽयं शैलपृष्ठस्थविश्वविद्यालयान्नगराभिमुखमुपसर्पतो घण्टापथस्य वामपार्श्वे कस्मिंश्चिद्धस्तिनखे प्रदेशेऽवस्थित आसीत् । अत्रैव निषद्य आविश्वराजनीतेः विश्वविद्यालयघटनाचक्रं यावद् आब्रह्माण्डरहस्यादात्मसमस्यां यावद् विविधाः सम्बद्धासम्बद्धास्तास्ताः कथाः कुर्वाणा वयं प्रायेण होरात्रयं क्षपयाञ्चक्रुम ।

मध्ये-मध्ये प्रत्यग्रोष्णचायनिर्माणादेशोऽप्यस्माभिर्नव्यक्रियत । अस्माकं चतुष्पथवलीवर्दानां देशकालव्यक्तिचिन्तानपेक्षिणां निर्बन्धमुन्मुक्तं च व्यवहारं समवलोक्य आपणिकोऽपि परां प्रीतिं प्रपेदे । तस्य धनागमोऽप्यासीदित्यपरः पक्षः । परन्तु अस्मच्चर्चाश्रवणानन्तरं समाचारपत्रमपि तद्दिवसीयं तत्कृतेऽजागलस्तनायमानमेव प्रतिभातिस्म ।

अस्मच्छिष्यायाः कस्याश्चित् पितृचरणस्तावदेव सहसा दिवङ्गतः । तस्या अभिधानमपि पश्चादेव श्रुतम्मया । कूर्मीभूय जीवयात्रां विदधतो मे संसारोऽतिसंक्षिप्त आसीत् । मद्रहस्यवेदिनः सुहृदोऽपि द्वित्रा एवासन् । अन्तर्मुखव्यवहारवशाद् विद्यार्थिभिश्चाऽप्यहं स्ववयोऽपेक्षया समधिकतरप्रौढ एव परिलक्षितः । मन्ये ज्वालामुखभूधरमिव मां सम्प्रेक्षमाणा नैके माणवका मां दृप्तं नीरसं विषमप्रकृतिं दुरधिरोहञ्चापि मेनिरे । तथ्यमिदं नासीत्परमार्थतोऽवितथम् । मद्धृदयगह्वरे प्रवहन्तीमुशीरशीतां चन्द्रभागावदातां मुक्तिसुखप्रदात्रीं भावभागीरथीं को नु खलु पश्यति ! मम यौवनमपि रूपसौन्दर्यभावनानुरोधवशबलितमासीत् । परन्तु प्रशान्तवृत्तित्वान्न मया तत्प्रदर्शनं कृतम् । स्वविद्यार्थिनां कृते बृहस्पतिकल्प एवासमित्यपि नाविदितचरमासीन्मे ।

प्रायेण सर्वेऽपि प्राध्यापकाः लीलायाः पितृवियोगादाहता व्यथिताश्चासन् । बालकपोतीव न किञ्चिदपि कुर्वाणाऽप्यसौ कन्याजनोचितशीलसमुदाचारप्रतिमूर्तिः कक्षायां प्रायेण समेषामेव गुरुजनानां सतीर्थ्यानाञ्च प्रश्रयमर्जितवती । लघुकुटुम्बे तस्याः पिता एव सर्वस्वभूत आसीत् । सहसोपरते च तस्मिन् विध्वस्तमहान्यग्रोधकुलाया विहगा इव सर्वेऽपि कुटुम्बसदस्या म्रियमाणा ददृशिरे ।

मित्रैस्सार्धमहमपि लीलां सान्त्वयितुं तद्भवनमुपगतः । गुरुजनान् दृष्ट्वा प्रवृद्धशोकरयाऽसौ मुक्तकण्ठमरोदीत् । व्यथोच्छूने रक्तापाङ्गे नयने तस्याः समवलोक्य स्फुटितं मे हृदयम् । आसीच्च मच्चेतसि—आः दुर्दैव ! किमेवमनार्यमाचरसि ? येऽनिशं पापकर्मनिलीनाः परेषामभ्युदयं न मनाक् सहन्ते, सम्पादितप्रायमपि सत्कार्यमकारणं विघातयन्ति तेषां शीर्षपीडाऽपि न जातु जायते ! परापवाद एव येषां कल्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्तः परापमान एव येषां सपीतिः परापभ्रंश एव येषां सन्धिः परेषां प्रसुमरकौलीनमेव येषां कान्तारविहारसौख्यं ते त्वयाऽपि धृतराष्ट्रेण महाभारतसूत्रधारेण नाक्षिलक्ष्यीक्रियन्ते ? सर्वथा धिक्त्वामसाम्प्रतकारिणं पीडितपीडकं मर्दितमर्दकं निहतघातकम् !!

मनोभावानामनुद्रेकवशाज्जडीभूतं मम हृदयमद्य जीवने प्रथमवारं प्रसह्य प्रह्वीभूतम् । मूर्च्छितप्रायां वृद्धां जननीं पितृवात्सल्यविनाकृताञ्च मल्लीदलकोमलाङ्गीं लीलां दर्शं दर्शं शैलेयमपि हृदयम्मम निर्यासीभूय निस्यन्दितुमुपचक्रमे । कुटुम्बविपदं दृष्ट्वा सर्वेऽपि क्लिन्नलोचनाः सञ्जाताः । नियतिविधानोपदेशपुरस्सरं लीलां तज्जननीञ्च प्रबोध्य वयं सर्वे स्वावसथान् प्रतिनिवृत्ताः । मन्ये लोकोपचारनिर्वहणमात्रपरितुष्टास्सर्वे प्रकृतिमुपगताः ।

परन्तु गभीरशोकशङ्कुविद्धोऽहं न हृच्छान्तिमुपगतः । उत्थितं निषण्णं पर्यटन्तं शयानमुन्निद्रमुत्स्वप्नायमानं वा मां वर्षोद्धुरकादम्बिनीकपिशं लीलाविलोचनयुगलं नितरामतिमात्रतरामतीतपत् । कस्मादीदृगवस्थोऽस्मि सञ्जात इति समीक्षाधियाऽध्यात्मालोचने कृते नाहं ज्ञातवान् । परन्त्वेतावन्मात्रं सम्यग् ज्ञातम्मया यल्लीलावेदनयाऽभिभूतोऽहं शनैः शनैः लीलयैव वशीकृतः ।

प्रेम्णि का प्रमाणमीमांसा ? परतः प्रामाण्यन्तु सर्वथाऽपार्थकमेव । स्वतः प्रामाण्यमेव प्रभवत्यत्र । कन्दर्पपुरोहितेऽस्मिन् आत्मजिदध्वरे मौनमेव मंत्रसमवायः कौलीनमेव लाजाक्षतवर्षणं नयनानुराग एवापूर्वसृष्टिर्दाम्पत्यसिद्धिरेवावभृथस्नानम् । तादृशे विलक्षणसत्रे दीक्षितोऽहमासं निभृतनिभृतम् ।

किन्तु केन व्यपदेशेन पुनराश्रमपदं गच्छेयमित्यासीन्ममापि सम्भावनाविधुरा दौष्यन्ती स्थितिः ।

समयचक्रं द्रुतगत्या भ्रमिषु परिवर्तितुमारेभे । दिनेभ्यः सप्ताहाः सप्ताहेभ्यश्च मासा व्यतीताः । समासन्ना जाता एम्. ए. परीक्षा । कस्मिंश्चिद् दिने तस्मिन्नेव लघुचायपानापणे वयं द्वित्रा सुहृदःपुनरपि समेता आस्म । नैकविषयिणी वार्ताऽन्तिमे क्षणे लीलाकुटुम्बस्थितिं पस्पर्श ।

—वराक्या वृद्धायाः समक्षं सर्वाधिकमहनीयो विषयः लीलाया विवाह एव । कथं सम्पादयिष्यति सहायहीना स्थविराऽसौ ? मित्राणामन्यतमोऽवदत् ।

—लीलैव तस्याः सर्वस्वम् । पत्युपार्जितं धनं गृहं सुवर्णादिकञ्चापि लीलाधीनमेव । एवं सत्यवश्यमेव कोऽपि साहसी युवकस्तस्याः पाणिं ग्रहीष्यति । द्वितीयोऽकथयत् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—रूपसौन्दर्यशीलनिधानभूताऽसौ कन्या। निर्वातसरसीव शान्ता वत्सतरीव च ऋजुकाऽस्ति। यस्मिन् गृहे यास्यति तत्स्वर्गं विधास्यति। तृतीय उदाजहार।

—त्वं कस्मान्न किञ्चिद् भाषसे ? किं लीलया सह नास्ति तव महानुभूतिः ? सर्वाधिकं गम्भीर्यन्तु त्वमेवोद्वहसि तद्गृहगमनादारभ्य। प्रथमः सुहृत्पप्रच्छ माम्।

किमाख्येयमासीन्मया ? वस्तुतः पर्याय एव नागतो मम संवादस्य। मित्राणां वचनेषु न मे श्रद्धेति न। तथापि केनचिदवसरेण भवितव्यमधरपुटोन्मीलनाय! सम्प्रत्यामंत्रितस्सन् प्रोक्तवानहम्।

—बन्धो! किम्मां जडपाषाणनिर्विशेषमवगच्छसि ? ममापि शरीरे हृदयाख्यं वस्तु वर्तते। त्वत्तोऽप्यधिकं लीलां लीलायमस्याञ्चावगच्छामि।

—तर्हि कथं न तस्याः साध्व्याः पाणिं त्वमेव गृह्णासि ? कोऽत्र दोषः ? केनचिदुक्तम्।

—साधु साधु। समुचितं व्याहृतम्। अस्मात्परं पुण्यं सत्कर्तव्य वा किमपरं भविष्यति ? सर्वे युगपदेव प्रोचुः।

अकस्मादेव वातावरणं निरतिशयगम्भीर सञ्जातम्। समेषां प्रश्नानां समाधानं सम्प्रति मत्पार्श्व एवासीत्। मत्सुहृदोऽपि मन्ये मन्दाक्षमनुभवन्तस्तूष्णीमवतस्थुः। को नु खलु मौनं भजगात् ?

मद्व्याहरणात्पूर्वं केनचिदुक्तम्—भवतु अलंमुत्ताम्य। परिहासविजल्पितमेतत्र दुस्त्यजविकल्पत्वेन ग्राह्यम्। काचिदन्या वार्ताऽस्माभिः चरणीया!

—परन्त्वहं तमेव सन्दर्भं विशदीक्रियमाणमिच्छामि। मौनं खलीकुर्वन्नहमवदम्!

सर्वेऽपि वयस्या निरर्गलं जहसुः। सान्ध्यसरोरुहकल्पानि नेत्राणि समेषां मित्राणां सहसा विकसितानि। तेषामन्यतमः साश्चर्यं पप्रच्छ।

—भोः सत्यमेव लीलामुद्वोढुं शक्नोति भवान् ?

—किमत्राश्चर्यम् ? पुरुष एव नारीं परिणयति। पुरुषोऽहमकृतदारक्रियः। किञ्च, लीला सर्वगुणसम्पन्ना कन्या। किमपरं काम्यते परिणिनीषुणा वरेण ? समन्दस्मितम्मयोक्तम्।

—किं पितृचरणोऽपि प्रस्तावमिममभिनन्दिष्यति ?

—यदीयमाशङ्काऽऽसीन्मनसि कथं तर्हि प्रसंगोऽयमुपन्यस्तो भवता ? न खलु नर्मपरिहासविषयः लीलोद्वाहप्रसंगः! यदि पुनः परामर्थतः परीक्षितो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मद्विवेकोऽत्रभवद्भिस्तर्हि श्रावितो मया स्वनिर्णयः। श्रुत्वा भवन्त एव प्रमाणम्! निरन्तरमवादिषं सर्वमेतत्।

—विजयस्व वयस्य! शतायुर्भूयाः! युक्तरूपमिदं सहृदयोत्तमस्य भवतः। भवद्भिरेव प्रज्ञा।रमितैर्विवेकमात्रनियामकैर्निरङ्कुशयुवजनैः समाजधर्मो धार्यते न पुनः परम्परामात्रसम्पोषकैः पितृज्ञातिहस्ताभ्याशमुपगतैः निष्प्राणैः कृत्रिमपुत्रकैः। अद्यैवेतः प्रस्थाय लीलागृहं गच्छामि। मन्ये भवाननुमन्यते माम्! वयस्यो मामवोचत्।

—कोऽत्र सन्देहः? यदि लीला मयि वृत्तमनोरथा स्यात् तस्या जननी वा सर्वमुपपन्नं स्वीकुर्यात्तर्हि तिलमात्रमपि न मे विमतं सन्दर्भेऽमिन्।

एतज्जवनिकोद्घाटनसमकालमेव मज्जीवनरङ्गमञ्चे सौख्यनाट्यमारब्धम्। सन्दर्भेस्मिन् पितृचरणानामसहयोगो मया सम्यगपेक्षित आसीत्। निखिलकलिङ्गभूसुरसमाजे ख्यातेः प्रतिष्ठायाश्च पराकाष्ठामधिरूढोऽसौ वर्णान्तरकन्यकामुद्वहन्तं मां नाभिननन्द। शास्त्रप्रमाणोऽसावासीत्। लोकप्रमाणश्चाहम्। शेमुषीसञ्चालितोऽसावासीत्। हृदयसञ्चालितश्चाहम्। परम्परापालकोऽसावासीत्। परम्पराप्रवर्तकश्चाहम्। भावणबलतापक्षधरोऽसावासीत्। अहं पुनः करुणामेव समग्रजीवनासेचनकल्पवल्लीं मन्यमानः!

न मे श्रद्धाभावोऽपचितस्तातचरणेभ्यो न चापि तस्य वात्सल्यं मत्। तथाऽप्यावां संवादिनि जीवनपथे सगाढोपगूढं युगपदटितुं नाशकाव। मिथो गुरुत्वाकर्षणनिबद्धौ ग्रहाविवावामेकस्मिन्नेव जीवनतारापथे पृथङ्मार्गाभ्यां समरेखमग्रेऽसराव। विचित्रमासीदावयोर्दवीयस्त्वम्। तद्रहस्यं प्रत्यक्षप्रमाणैकसम्बलो लोको न विदाञ्चकार।

आवयोर्विचारसंघर्षे वराकी जननी किं कुर्यात्! नासौ शास्त्रज्ञा न वा निर्बन्धपरायणा! सा तु पुत्रवधूमुखदर्शनार्थमुत्कण्ठिता। आनुकूल्ये प्रातिकूल्ये वा-आह्लादे विषादे वा, सुखे दुःखे वा, सामर्थ्ये ऽ सामर्थ्ये वा शान्तनयननिर्यदश्रुमन्तरिरेव तस्या अक्षयसम्पत्तिरासीत्। तयैव सम्पत्त्याऽऽत्मानमभिनन्द्य सा निजाशिषः प्रददे।

लोष्टाघाततरङ्गितनिपानमिव विरोधानुरोधसंक्षुब्धं जीवनं प्रशान्तं जातं कालक्रमेणैव सार्धम्। लीलागमनेन मरुवणायमानं मत्सर्वमपि संविधानकं नन्दनं जातम्। सौवर्णा दिवसा राजत्यो निशीथिन्यो हीरकद्युतयश्च मध्याह्नाः! तस्याः कृते नाहं स्वाम्यधिकारानवच्छिन्नः पतिनामधेयः कश्चित्प्रवल्लिकापुरुषः। अहमासं तन्मनोमन्दिरगर्भगृहे प्रतिष्ठितः कश्चिद् विलक्षण एव तदिष्टदेवः। यत्साहसं मयाऽनुष्ठितं तेन साऽऽत्मानं नितरां मदनुग्रहोपकृतां मेने।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्त्वियं भावना तस्या न मह्यमतितरामरोचत । दाम्पत्यमधिकृत्य मदात्मचिन्तनं सर्वथा नूतनमेवासीत् । दाम्पत्यं नाम किम् ? मिथः प्रणयनिबद्धयोर्द्वयोः स्त्रीपुरुषयोर्नैष्ठिकस्संयोगः । निष्ठैव दाम्पत्यमूलम् । इयं निष्ठाऽप्युभयपक्षीयैव । यथा पत्न्या निष्ठा पतिं प्रत्यपेक्ष्यते तथैव पत्नीं प्रति पत्युरपि । एवं हि दाम्पत्ये न कोऽपि कमपि कथमप्यनुगृह्णात्युपकरोति वा । आत्मकर्तव्यनिर्वहणे दाम्पत्योचितनिष्ठापरिपालने वा कीदृग उपकारभावः ? कीदृशी अधमर्णतोत्तमर्णता वा ?

परन्तु यादृशैः कुटुम्बसंस्कारैः लीला संवर्धिताऽऽसीत्ते संस्कारा आजीवनं तामभ्यभूवन् । साऽऽजीवनं मां पर्यपूपुजत् प्रेमाश्रुपादोदकैः स्निग्धदृष्टिनीराजनाभिः श्रद्धानुरागकुसुमैः हृदयविष्टरैरात्मसमर्पणैश्च । सगुणोपासनाऽऽसीत्तस्याः । अहं पुनः प्रकृत्यैव निर्गुणनिराकारोपासनापक्षधरः । कवितयैवाहं स्वजीवनसूत्रधारिणीं नितरामर्चितवान्—

राशीभूतविशदहिमधवले
क्षीरसागरे सुतरां विमले !
शेषशायितनुलेखाललिता
विलसति कनीनिका सन्तुलिता !!

पवनविधूतबलाहकतरले
नभसि कौमुदीशकलकोमले !
अधरसंयता नयनविगलिता
कीलितहासकलानुबिम्बिता !!

तव नयनाकलिता !
नामरूपसम्बोधनरहिता
भवति नवा कविता !!

तदारभ्येदानीं यावत् प्रायेण त्रिंशद्वर्षाणि दिवसत्रयकल्पानि व्यतीतानि । हन्त गरुत्मान् कालविहगः ! कियद्वेगेन झम्पते जीवनाकाशे ! हय् एव सर्वमारब्धमासीत् । अद्य पुनः सर्वं परिसमाप्तम् । अनयोर्द्वयोरेव मध्ये प्रत्याहृतं जीवनं मध्यगानां सकलानुभूतीनां सम्प्रति ज्ञापकं प्रतीयते । पितृचरणश्शाश्वते ब्रह्मणि विलीनः पाञ्चभौतिकमात्मविहगपञ्जरमपहाय । कामधेनुकल्पा वत्सला जननरपि स्मृतिविषयतामुपगता । अन्धवात्योपद्रुताः कियन्त एव विपद्दिवसा जीवनोद्याने नागताः ? परन्तु विश्वरूपायमाणे सहधर्मिणीसाहचर्येऽभते सति तद्द्वितीयोऽहं सर्वमपि सहेलं सोढवान् । अद्य पुनस्तस्यामेव दिवङ्गतायां सर्वथाऽसहायोऽस्मि जातः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथाऽतर्कितमेवासौ मज्जीवने समागताऽऽसीत् तनोऽप्यधिकमाश्चर्यं विदधती निभृतनिभृतं लोकान्तरं सम्प्रस्थिता। न जिजीविषापक्षयो न वाऽसाध्यरोगः कश्चित्। न खलु शीर्षवेदना कदापि तस्या जाता। न प्रस्थानामंत्रणं न वैसर्जनकालिकः प्रणामः! स्वान्तःप्रकाशितैवाऽसौ नीरवरजन्यां न जाने कुत्र विलीना? एतावदपि प्रष्टुमवसरं न दत्तवती यत्क इवासीन्ममापराधः! सम्प्रति जायते मच्चेतसि —

निरीहयात्रा यदाङ्गीकृता
मयैकाकिना नियतिकल्पिता!
जनसङ्कुलकोलाहलकलिता
केवलनिराकारता फलिता!!

बहुधा परिचितनवपरिवेशं
मयि सरसञ्च तवाभिनिवेशं
स्मरति तथाशेषं
स्वान्तः प्रकाशिता
रजनीनीरवता!!

तस्यां रात्रावपि यथापूर्वमावां भोजनं निष्पाद्य प्रसुप्तौ। स्वापात्प्राक् कनिष्ठपुत्रस्य विवाहसन्दर्भे वार्ताऽजायत। विवाहसम्बन्धः प्रायेण निश्चित एवासीत्। मया तु पूर्वमेव कन्यकाऽसौ सन्दृष्टा। सम्प्रति युगपदेव गत्वोभाभ्यां यौतुकोपायनादिभिरसावभिनन्द्याऽऽसीत्। पुत्रेण चापि वधूवरणप्रतीकभूतमङ्गुलीयकं तस्यै प्रदेयमासीत्। तत्सर्वमपि सविस्तरं समालोच्यावां निद्रातुं प्रवृत्तौ। कः कदा सुष्वापेत्यपि न ज्ञातम्।

लीला प्रायेण मत्तः पूर्वमेव प्रबोधमलभत। सैव नित्यं मां प्रावोधयदित्यासीत् त्रिंशद्वर्षीयो जीवनक्रमः। परन्तूत्तरेद्युर्यदा स्वयमेवाहं प्रबुद्धो न तया जागरितस्तदा महान् विस्मयो मे जातः। हस्तग्राहं सा मया प्रबोधयितुमिष्टा। परन्तु किमिदम्? मया मुक्तस्तत्करो निश्चेष्ट इवाधिशय्य पपात। सम्प्रति हृत्स्पन्दनं मे प्रवृद्धम्। सझम्पमहं तदभिमुखीभूय तन्निष्प्रभमुखं निर्निमेषमवलोकयन् हत इव मुषित इव जडकाष्ठकल्पः स्थितः। रिक्त आसीत्पञ्जरः। पक्षी निभृतमुड्डीनः क्वचिद्रहसि!

या निशा तस्याः कृतेऽनवबोधिनी जाता सैव मत्कृतेऽधुना प्रबोधिनी प्रतिभाति सततमेव। प्रागभिनयं जीवन्नासम्। इदानीं पुनर्जीवनमभिनयामि। तदेव गगनम्। सैव धरा। स एव कुटुम्बपरिवेशः। तदेव ज्ञातिमित्रपरिचितस्वजनमण्डलम्। परन्तु लीलाविहीनं न किमप्यात्मीयं प्रतीयते। सर्वमेव विपर्यस्तं जातम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होरां यावत् प्रियजनपत्रं किमपि सयत्नमन्विष्यामि । गृहे एक एव लघुकक्षो मत्पदगतिनियन्ता । नान्यत्र क्वचिद् गच्छामि । तत्रैव सर्वं वस्तुजातं निदधे । तथापि कक्षोऽसौ सम्प्रति ग्रहनक्षत्राकाशगङ्गोल्कापिण्डादिसमन्वितो जटिलजटिलो ब्रह्माण्ड एव प्रतीयते । मंत्राविष्ट इव तस्मिन्नेव कक्षे दन्द्रम्यमाणः परियामि । विवेकप्रमायष्टिर्मे विनष्टा । प्रभामण्डलस्मृतिरेव सम्प्रति जीवनाधारः ।

राम एव जानाति जीवने पराजिता वा वयं विजयिनः ।
यदवशिष्यते विरते गीते गुञ्जनमेव न किं तद् बहु रे !!

एकचक्रोऽधुनायं जीवनरथस्तथापि संकल्पाश्वैर्यथायथमाकृष्यत एव । यात्रैव जीवनरथस्य लक्ष्यम् !!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पोतविहगौ

इक्षुपत्रविनिर्मिते लघुनि तृणकुटीरे पर्याकुलमूर्धजा महुली भूमावेव शयाना बाष्पगद्गदकण्ठेन रोदितिस्म। अद्य तस्याः शिलीन्ध्रकोमलं हृदयमुद्विभन्नमासीत्। यस्य भुजावलम्बनमवाप्य विपत्सिन्धौ निमग्नप्रायाऽपि सा तटभूमिमुपगता, यदधमर्णी-भूयाप्युत्तमर्णायमाना सा कौलीनसमुपचिते समाजे साभिमानं निर्भरं जिजीव स एव हृदयवल्लभोऽद्य तां सर्वजनसमक्षं न्यक्कारैरपमेने। तर्हि किमर्थमसौ जीवेत् साम्प्रतम् ? व्यतीतप्राया दिवसा महुलीं व्यथयितुमारेभिरे।

चत्वारिंशत्तमस्य खिस्ताब्दस्य कश्चित् कालखण्डोऽयमासीत्। जौनपुरजनपद-स्थगोरापट्टीग्रामवास्तव्यः कश्चिद्युवको निहालपाण्डेयनामा स्वभगिन्याः कुशल-मवगन्तुं तच्छ्वसुरालयं कान्हवंशीपुरमाजगाम। पिता तस्य चित्तूपाण्डेयः परम-निर्धनो भगवत्परायणः सत्यनारायणकथावाचनादिकैः पूजाकृत्यैर्यथाकथञ्चित्कुटुम्बं पालयामास। न पुष्कला भूमिः कृषियोग्या। यावती सुरक्षिताऽसावपि हलवृषभा-भाववशात् कृष्टिसौख्यमनवाप्य वन्ध्यात्वमुपगता। गृहे निहालभुवालसंज्ञौ पुत्रौ पत्नी सतीतपतीरूपमतीसंज्ञाश्च तिस्रः पुत्र्य आसन्। कथमसौ भोजयामास तान् सर्वानिति स्वयमपि न जानातिस्म।

ज्येष्ठपुत्रत्वेन निहालः पितुर्दैन्यं दशं दशं भृशं तताप। परन्तु सर्वथा निरुपायो विवशश्चासौदसौ। ब्राह्मणकुले सञ्जातस्सन् लाघवकरीं सेवावृत्तिमपि कर्तुं नासौ चक्षमे। दुर्भाग्यवशाद् विवाहोऽपि सम्पन्न आसीदबोधविकले वयसि। सम्प्रति पत्नी शनिदशेव शिरस्यारूढाऽऽसीत्। अवाञ्छितोऽपि दारकः समुत्पन्न इदानीं त्रिवर्षदेशीय-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्समजनि । ततश्चाप्यपरं कृच्छ्रं हृच्छूलकरं यद्गृहिणी पुनर्गर्भभारमन्थरा समदृश्यत । विपच्चक्रवालोद्भ्रान्त आमीन्निहालः । मध्वन्वेषणार्थं वने प्रविष्टो विस्मृताध्वाऽध्वनीन इव निहालः सर्वथा किंकर्तव्यविमूढस्तस्थौ ।

भगिन्याः श्वसुरस्तिवारी शिवमूर्तिः सेनायां हवलदारपदमधिरूढ आसीत् । इदानीमसौ सावकाशस्सन् स्वग्राममागत्य विश्रामसुखमनुभवन् कालं क्षपयतिस्म । सङ्कटापन्नाऽऽसोत्संसारस्य स्थितिः । नृशंसहिटलरस्य नाजीसेना सकलमपि यूरोपमहाद्वीपमातङ्कयमाना द्रुतपदैरग्रेससार । इटलीदेशीयो मुसोलिन्यपि तेनात्मानं संयुयोज । विपत्कालमेधाः समग्रामपि मानवजातिं भीषयन्तिस्म । यद्यपि इंगलैण्डदेशोऽपि मित्रराष्ट्रैस्सह हिटलरमुपरोद्धुं बद्धपरिकर एवासीत् तथापि ब्रिटिशशासनानुगता भारतीयवाहिनी सम्प्रत्यपि शासनादेशं प्रतीक्षमाणा स्वदेश एव तिष्ठतिस्म । सर्वेऽपि सैनिका द्रागाह्वानं समुत्प्रेक्ष्य युद्धविभीषिकाञ्चापि साधु समनुभूय स्वप्रियजनान् दृग्गोचरीकर्तुं प्रायेण स्वग्रामान् प्रतिनिवृत्ता आसन् ।

रात्रौ श्वसुरं सोदरञ्च भोजयन्ती निहालस्वसा विनतमन्दस्वरेण प्रोवाच तात ! सोदरो मे सैनिकीभवितुमिच्छतीति । विपद्ग्रस्तं मत्पितुर्गार्हस्थ्यम् । अत एनं सम्भावयितुमर्हति भवान् ।

श्वसुरो न प्रत्युवाच किञ्चित् । निहालस्वसा साधु जानातिस्म यद् भोजनकाले तातचरणो मौनमवलम्बते । कथमपि न वक्ति । तस्मान्न सा नैराश्यमुपगता । सोदरं निहालमपि सान्त्वयामास । उभावेव भोजनं निष्पाद्य बहिरागतौ । तिवारीशिवमूर्तिः दन्तच्छिद्रेषु संसक्तान् अन्नकणान् आढकीषिकयाऽपसार्य गण्डूषजलैर्मुखं प्रक्षाल्य मौञ्जीं खट्वां तलिच्छकावृतां शाल्मलितूलोपधानां गत्वाधिशिश्ये । अवसरं निभाल्य निहालोऽपि तच्चरणौ संवाहयितुमुपचक्रमे ।

निहालस्वसा तावदेव ताम्बूलवीटिकामुपादाय श्वसुरसमीपमाजगाम । तद्धस्तात्ताम्बूलं गृह्णन् पप्रच्छ शिवमूर्तिः— वधुके ! किमुक्तं त्वया ? सोदरस्ते सैनिकीभवितुमिच्छति ? अस्मत्समधीश्चित्तूपाण्डेयस्तु परमशान्तो भगवद्भक्तश्चास्ति । किमसौ स्वपुत्राय सैन्यप्रवेशानुमतिं दास्यति ?

— तात ! कथं न दास्यति ? गृहे भोजनप्रबन्धोऽपि न वर्तते । न क्षेत्रं न हलं न बलीवर्दौ । न चाप्यपर उपायः कोऽपि जीविकायाः । यदि नामायं पणकद्वयं नार्जयिष्यति कथं तर्हि पितरौ पुत्रकलत्रादीन् वा भोजयिष्यति ? वधूः प्रोवाच ।

—सम्यगुक्तं त्वया । यद्येवं तर्हि श्व एव प्रभातेऽयं गृहं गत्वा कुटुम्बिजनान् प्रणम्य च झटित्यागच्छेत् । एनमादाय गमिष्यामि शीघ्रमेव कर्णपुरम् । नूतनसैनिकानां प्रवेशकार्यं जवेन प्रवर्तते सम्प्रति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तातवाचं निपीय गिरिनिर्झराश्च्योतितमनुर्व्यपगतवपुस्सन्तापो निहाल उत्तरेद्युरेव गोरापट्टीं प्रतिनिवृत्तः ।

(२)

पञ्चचत्वारिंशत्तमः खिस्ताब्दोऽस्याः शताब्द्याः प्रारभत । निहालपाण्डेयस्सम्प्रति बर्माख्यदेशस्य रंगूननगरोपकण्ठस्थिते सैन्यस्कन्धावारे निवसन्नासीत् । शिवमूर्तिकृपयाऽसौ प्रयत्नं विनैव सैन्याधिकारिभिः स्वीकृतः । हवलदारस्य शिवमूर्तेः संस्तुतिरपि प्राभवत् । निहालः स्वयमपि सकलसैनिकगुणान् साधु बिभर्तिस्म । तस्य प्रांशुत्वं तालकल्पं, पीनवक्षस्त्वं नगरगोपुरकवाटकल्पं, धावनगतिरश्वनिभा परिश्रमक्षमत्वञ्चेति सर्वमपि तच्चयने साहाय्यमकरोत् ।

प्रविष्टमात्र एव सेनायामसौ प्रशिक्षणार्थं कर्णपुरात् मयराष्ट्रं, मयराष्ट्राद् देहरादूनं ततश्चापि बंगप्रान्तस्थं सैन्यनिवेशं खिदिरपुरमानीतः । भारतीया सेनाऽपि ब्रिटिशशासनपक्षतो द्वितीयविश्वमहायुद्धदावानले एतावता कालेन झम्पते स्म । अतएव नूतनसैनिकानां प्रशिक्षणं सर्वथा दुर्धर्षं कष्टकरञ्चासीत् । परन्तु ग्राममृत्तिकायां नक्तन्दिवं खेलित्वा कूर्दित्वा संवर्धितो निहालः सर्वमपि सङ्कटजातं पुष्पभारं मन्यमान एव सर्वासु प्रशिक्षणक्रियासु सुहृज्जननेतृत्वं विदधत् निष्प्रयासं समुत्तीर्णः ।

निखिलेऽपि यूरोपे एशियामहाद्वीपे च घस्मरसङ्गरः प्रवर्ततेस्म । जर्मनीटलीराष्ट्रयोः संवलिता वाहिनी प्रायेण समग्रमपि मध्यवर्तिभूखण्डं रावयन्ती चूर्णयन्ती स्वायत्तीकुर्वाणा च रूसदेशस्य महानगरं लेनिनग्राडमपि भीषयितुमुपचक्रमे । तयोश्च पक्षधरा जापानदेशस्य सेना सहसा इण्डोनेशियाराष्ट्रराजधानीभूतं ब्रिटिशशासने स्थितं जकार्तानगरमाक्रम्य तत्रात्मस्वाम्यं स्थापितवती । पराजिता ब्रीटेनवासिनः पराङ्मुखीभूयेतस्तत उपद्रुताः । सहस्रमिताश्च जापानसैनिकैर्निगृहीताः ।

ब्रिटिशशासनविरोधोद्धुरः प्रतिपक्षभयङ्करो राजद्रोहीति भारतीयब्रिटिशशासनेन समुद्घुष्टो भारतस्वातन्त्र्यस्वप्नदर्शी आजादहिन्दसेनानायको नेता सुभाषचन्द्रबोसोऽपि जर्मनीजापानसहयोगमवाप्य सशस्त्रक्रान्त्या सिंगापुरं ब्रिटिशाधिपत्यान्मोचयन् रंगूननगरं यावद् वात्यारयेणाजगाम । सर्वत्राऽपि कोलाहलः क्रन्दनं विद्रवणध्वनिश्च । न रात्रौ निद्रा न दिवसे विश्रामः । कदा किं भविष्यतीति न कोऽपि ज्ञातवान् ।

अस्मिन् महति राजसङ्कटे भारतीयसैनिकाः प्राणान् पणीकृत्याहोरात्रं ब्रिटिशपक्षरक्षायै प्रयत्नान् अकार्षुः । सप्तदिनानि यावदनश्नन्तस्ते दुर्गमगिरिशृङ्खलासु करालसत्त्वनिचितासु मार्गान्वेषणपराः ढौकन्तेस्म । कियन्तो मृता अन्नजलाभावे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कियन्तो मूर्च्छिताः सम्प्राप्ताः कियन्तश्च भुशुण्डिगुलिकाहृता उपचारार्थमौषधालयमानीयमाना मध्येमार्गमेव पञ्चत्वमुपगताः। अद्यापि निहालस्तत्सर्वं प्रत्यग्रघटितमिव संस्मरति।

परन्तु पञ्चचत्वारिंशत्तमे खिस्ताब्दे समागत एव युद्धस्थितिरकस्मात्परिवर्तिता। त्रिदोषा इव सन्निपातहेतवो जर्मनीटलीजापानदेशा निहतपौरुषाः सञ्जाताः। एकतस्तु लेनिनग्राडमहासमरे नाजीपृतनापराजयोऽपरतस्तु जापानमनोबलविनाशार्थम् अमरीकाकर्तृकोऽण्वस्त्रप्रयोगः। अण्वस्त्रपातनमात्रेण नागासाकीहिरोशिमानिगमौ श्मशानकल्पौ सञ्जातौ। कतिपयनिमेषान्तराल एव लक्षमिता नरनारीबालकवृद्धप्रभृतयो जना दावाग्निना पिपीलका इवाण्वस्त्रप्रयोगेण भर्जिताः। निखिलविश्वं निनिन्द नृशंसकारिणममरीकादेशम्। परन्तु किमनेन! प्रेम्णि युद्धे च सर्वं युक्तियुक्तम्।

शिथिलप्राय एव जापानशासनतन्त्रे सम्प्राप्ते च भारतीयसैन्यसाहाय्ये जकार्तानगरं पुनरपि ब्रिटिशाधिकारे समागतः। नेतुस्सुभाषचन्द्रबोसस्याप्यतर्कितमहाप्रयाणघटनयाऽऽजादहिन्दसेनाया रणाभियानं समुन्मूलितम्। सर्वेऽपि सैनिका इतस्तत उपद्रुताः। शासनतन्त्रं समधिककठोरं नृशंसञ्च सञ्जातम्। येऽपि निगृहीताः पशुमारं मारिताः। सगस्त्रक्रान्त्या भारतस्वातन्त्र्यावाप्तिस्वप्नस्सुभाषचन्द्रस्य स्वप्न एव समजायत।

परिसमाप्ते सति महासमरे विजयिनी भारतीया सेना रंगूननगरं निकषा विश्रमं कृतवती। शौर्यपराक्रमप्रदर्शनवशान्निहाल इदानीं सैन्याधिकारिणां सहचराणाञ्च प्रीतिभाजनतामुपगत आसीत्। अनेके पुरस्कारास्तस्मै प्रदत्ता आसन्। परन्तु मनो निहालस्येदानीं संसक्तमासीत्कुटुम्बिजनेषु। प्रायेणासौ दिवा रंगूननगरपरिभ्रमणं विधाय रात्रावधिशय्यं शयानश्चिन्तयतिस्म तनयौ प्रियतमां पितरौ च। एवमभूत्तच्चेतसि—हन्त, पञ्चवर्षाणि व्यतीतानि! एतावता कालेन ज्येष्ठपुत्रो मेऽष्टवर्षदेशीयस्सञ्जातः। द्वितीयोऽपि सम्प्रति पञ्चवर्षीयः। मय्युपगते न तौ मां प्रत्यभिज्ञास्यतः। मातैव तयोः परिचाययिष्यति यद् वत्सकौ! अयमेव युवयोस्तातचरणः। हन्त, कियद् विचित्रं मनोरञ्जनप्रवणञ्च प्रतिभास्यति तद् दृश्यम्! ततश्च गृहिणी मे.... इत्यर्धोक्त एव प्रगाढसंवेदनागादीभूतो निहाल उपधानं निर्दयमाश्लिष्य कृतकसौख्यमनुभवितुमुपचक्रमे। सम्प्रति प्रतिदिनं पर्वतायमानं निशीथिन्यश्च कालभुजगीकल्पाः प्रतिभान्तिस्म।

निहालोऽत्रैव सर्वप्रथमं महुलीं मिमेल। कस्मिंश्चिद् दिने नगरोपकण्ठस्थिताद् ग्रामात् सैन्यवसत्यभिमुखमायान्ती सा निहालेन मध्येमार्गमवलोकिता। प्रागपि निहालस्तां नैकवारं सैन्यवसतिपरिधौ निपुणमीक्षाञ्चक्रे। भारतीयां भाषामपि यथाकथञ्चिदसौ वक्तिस्म। निहालो भक्ष्यपदार्थजातं क्रेतुमभ्यर्णचरपण्यवीथीं गच्छन्नासीत्। अपरि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चयवशान्निहालस्तां तिर्यग्विलोकनैरवलोक्य स्वयमेव मार्गाद्यावदपसर्तुमियेष तावदेव किञ्चिदुद्भिन्नाधरपाटला महुली रुचिरस्मेरं वितन्वती दृष्टिवागुरया च निहालचेतश्शम्बरं दृढं निबध्नन्ती हस्तौ सम्मेल्य प्रणतिमुपजहार श्लक्ष्णया च गिरा पप्रच्छ—'आर्य ! कुत्र भवान् गच्छति ? विपणिम् ! किञ्चित्क्रयणीयं वर्तते ? पूर्वेद्युरपि तत्र किञ्चित्क्रीणानं भवन्तमहमपश्यम् ।'

अतर्कितमपि तस्याः स्निग्धवचनोपन्यासं श्रुत्वा निहालोऽग्रेसर्तुं न शशाक। विस्फारितनेत्राभ्यां तामकारणबान्धव्यविसारिणीमज्ञातकुलशीलां रमणीं निपुणमवेक्षमाणो निहालोऽवदत्—भद्रे ! सम्यगवगतं त्वया। क्रय्यमेव वर्तते किञ्चित्—परिधानं गन्धतैलं शाकजातञ्च । पूर्वेद्युरपि पण्यवीथीं गतवानस्मि । त्वं कथं मामवलोकितवती ?

—यो यद् दिदृक्षते तत् पश्यत्येव । सकुटिलस्मितं महुली निस्सङ्कोचमवादीत् ।

लक्ष्यं विभेद शरः । शान्ते चेतसि निहालस्य पञ्चशरचरणसञ्चरणध्वनिरिवाश्रूयत । प्रेताविष्टो जन इवावाञ्छन्नप्यसौ मार्गमारुह्य महुलीसमीपमागत्य प्रावदत्—

—किन्नामासि भद्रे ?

—महुली····

—शोभनम् । अस्माकं देशेऽपि महुवानामकः कश्चित्तरुरतीवप्रियः । वसन्तर्तौ पुष्पति । प्रतिवृन्तं परश्शतानि पुष्पाणि ! तन्मदिरपरिमलैः समग्रोऽपि ग्रामग्रामटिकापरिसरः शौण्डिकापणायते । प्रह्वीभूयात्मानमकृतदारमनुभवन्निव लम्पटतामभिनयन्नवोचन् निहालः ।

—परन्तु····नाहं महुवा तव देशस्य । अहन्तु महुल्यस्मि । अधरं दशनपंक्तिभिर्विकुञ्च्य सकैतवमवदत् महुली ।

—जानामि जानामि ! परन्तु किमेतेन ? महुवा स्यान्महुली वा । साम्यं तूभयोर्वर्तत एव । वर्तते न वा ? त्वमेव भण । निहालस्तामनुरञ्जयन् पप्रच्छ ।

कतिपयनिमेषान् यावदुभावपि तूष्णीमास्थितौ । महुल्येव मौनमभाङ्क्षीत्—भवत्कृते कः पचति ?

—मल्ल इव कश्चित्सूपकारः । कफोणिद्वयं प्रसार्य निहालो जगाद ।

—किमसौ भवद्देशीयोऽत्रत्यो वा ? सोत्कण्ठमपृच्छन्महुली ।

—मूलतस्त्वस्मद्देशीय एव । किन्त्विदानीमत्रत्य एव सञ्जातः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

— कुत्र निवसति ?

— त्वन्नयनसमक्षमेव मल्लोऽसौ तिष्ठति। किमधुनाऽपि न पश्यसि तं महानसपण्डितम् ? सवाहुरसारमात्मानं प्रदर्श्य निहालोऽवदत्।

उभावेव निरर्गलं जहसतुः। अवशिष्टप्रायोऽप्यपरिचयः प्रनष्टः। नेदिष्ठौ सञ्जातौ तौ। तावदेव निहालोऽपृच्छत्—महुलि ! किमस्मत्कृते त्वं पक्ष्यसि ?

—अद्य एव ? इदानीमेव ? महुली समुच्छलन्ती प्रोवाच।

—वाढम् वाढम्। इदानीमेव। एहि, सर्वप्रथमं विपणिं गच्छावः। ततः सैन्यावसथं प्रतिनिवृत्य युगपदेव पक्ष्याव इत्येवमादीनि मन्त्रयमाण एव निहालो महुलीद्वितीयो विपणिं प्रतस्थे।

प्रणयसूत्रं तयोर्मध्ये व्यायतमासीदिदानीम्। तस्मिन् प्रीतिपरिधानवयनकर्मणि तानवानात्मकावुभावेव सम्पृक्तौ। प्रायेण सर्वेऽपि प्रातिवेशिका ईर्ष्याकषायितलोचनैस्तौ प्रणयाकाशविहारिणौ शकुन्तौ पश्यन्तः पापबुद्धिमेव कृतवन्तः। परन्तु महुली-निहालयोर्मिथोऽनुरागो घनसारपाण्डुरः सिद्धापगाम्भश्शुचिस्तुहिनाचलहिमराशिरिव निष्कलङ्क आसीत्।

प्रत्यहं महुली निहालवसतिमागच्छति। वसतिकुट्टिमं सम्मार्ज्य जलेन प्रक्षाल्य प्राङ्गणे व्रीहिचूर्णेन मङ्गलरचनां लोकप्रचलितां रचयति। निहालस्य मलिनवस्त्राणि फेनिलेन निङ्क्ते। ततश्च तत्स्नानार्थं जलद्रोणीं स्नानागारे निधाय तदभिरुचिमवगत्य भोजनं पचति। प्रणयसूत्रमिदमुत्तरोत्तरं गाढाद्गाढतरं सञ्जातम्। शनैः शनैर्निहालोऽपि महुलीजीवनवृत्तान्तमाद्यन्तं ज्ञातवान्।

बर्मादेशस्य रंगूननगरे परस्सहस्रा भारतीयाः प्रतिवसन्तिस्म। केचन धनोपार्जनाय समागताः प्रायेण वर्षपर्यायैः स्वजन्मभूमिमपि दृष्ट्वा पुनराजग्मुः। परन्तु केचन तत्रैव कामपि कन्यकां परिणीय स्थिरजीवनाः सञ्जाताः। महुल्यास्तातोऽपि तेषामेवान्यतम आसीत्। दुर्भाग्यवशात्कर्मशालादुर्घटनायामसौ पञ्चत्वमुपगतः। महुली तदा पञ्चवर्षदेशीयैवासीत्। अपरिपक्वानुरागबन्धा मेनकायमाना निःस्नेहा तज्जन्मदात्र्यपि वरयामास कमप्यपरं स्वदेशोत्पन्नं जनम्। पितृहीनां मातृपरित्यक्तां महुलीं जराजर्जरा तन्मातामही पालयामास। नाधिकं विद्यालये शिक्षिता महुली तथापि प्रतिभापाटवं विवृण्वती निखिलविश्ववृत्तं हस्तामलकमिव परिचिन्वत्यसौ सर्वान् विस्मापयतिस्म। तस्याः करुणकरुणां जीवनकथां निपीय निहालस्तस्यां परां प्रीतिं प्रपेदे।

इतरेद्युः भोजनं सम्पादयन् निहालोऽकस्मादवादीत्—भद्रे महुलि ! मया सार्धं भारतं चलिष्यसि ?

अपत्रपयाऽऽरक्तमिव सञ्जातं महुलीकपोलमण्डलम्। दृष्टिं साचीकृत्य सानुरागं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्यन्ती महुली अनुक्त्वापि किञ्चित् गगनपरिमितमाख्यातवती । शून्यापाङ्गयोस्तस्याः समुदितान् प्रश्नतारकानवेक्ष्य कान्दिशीको निहालः स्वयमेव त्रेपे ।

(३)

चिरप्रतीक्षिताऽसौ घटी समायाता । भारतीयसेनायाः स्वदेशप्रत्यावर्तनतिथिः सैन्याधिकारिभिः समुद्घुष्टा । परितोऽपि आनन्दमङ्गलामोदसम्भाराः प्राभवन् । सर्वेऽपि सैनिकाः कुटुम्बिजनानां कृते कामप्युपहारसामग्रीं क्रेतुमादिवसं रंगूननगरस्य निरन्तरालपण्यवीथिकासु गतागतं कुर्वाणाः पर्याकुला अदृश्यन्त । दयितार्थं गजदन्तवलयानि, दारकार्थं क्रीडनकानि पित्रर्थं च स्वचालितदृढातपत्रादीनि समादाय सर्वेऽपि प्रस्थानोत्सुकाः सञ्जाताः । सैन्यवाहको विशालजलपोतोऽपि तान् प्रतीक्षमाणः सागरवक्षसि तस्थौ । रंगूनात्प्रस्थाय कलिकातानगरं यावदागन्तव्यमासीत् ।

प्रस्थानपूर्वेऽहिन् सैन्यस्कन्धावारे महान् समारोहः समजनि । युद्धोपरतेभ्यो वीरसैनिकेभ्योऽश्रुपूरितनेत्रैः श्रद्धाञ्जलयस्सर्वप्रथमं समर्पिताः । ततश्च सेनाध्यक्षस्सैनिकान् सम्बोधितवान् । भारतीयसैनिकानां शौर्यपराक्रमकर्तव्यनिष्ठादिसद्गुणान् मुक्तकण्ठेन प्रशंसन्नसौ सैन्याचारसंहितां व्याख्यातवान् । अन्ते च सदयशुभकामनाभिस्तान् प्रत्युद्गम्यासौ मङ्गलयात्रायै विससर्ज ।

परन्तु किमिदम् ? प्रस्थानक्षणे महुल्यपि लघुपिटकमेकं हस्ते निधाय निहालगृहसमक्षं तिष्ठतिस्म । प्रस्थानकौतुकपरीवाहे प्रथमं तावदसौ न केनापि लक्षिता । परन्तु पाथेयादिवस्तुजाते द्राग्यानोपरि समारोपिते सति यदा सैनिका अपि गृहेभ्यो निष्क्रम्य जिगमिषवस्सञ्जातास्तदाऽकस्मादेव समेषां दृष्टिर्महुल्युपरि पतिता । निहालस्य प्रणयप्रतिमेयमिति कृत्वा न कोऽपि मुखं व्याददौ । किं भवितेति कुतूहलाक्रान्तधियस्सर्वेऽपि मूकास्तस्थिरे । निहाल एवोपससार तां पप्रच्छ च ।

—महुलि ! गन्तव्यमिदानीम् । स्वस्ति भवत्यै । मां विस्रष्टुमागतासि किम् ?

—अहमपि तव देशं चलिष्यामि !

—किं किमुक्तम् ? मम देशं चलिष्यसि ?

—अथ किम् ! त्वयैव सह चलिष्यामि ।

—महुलि ! कथमिदं सम्भवति ? निवर्तस्व भद्रे ! न मम देशो नेदीयान् । परश्शतैः क्रोशैरवाप्तव्योऽसौ । गच्छ, निवर्तस्व ! सुहृत्समवायमध्ये वैलक्ष्यमनुभवन् निहालः ससम्भ्रममवादीत् ।

—नाहमुपावर्तितुं समागता । त्वया सहैव गमिष्यामि । महुलीनेत्रेऽविरलाश्रुसन्ततिक्लिन्नेऽभूताम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—कथमहं त्वामवगमयानि महुलि ! न तव मया सह गमनमुचितम् । किं वक्ष्यन्ति लोकाः ? अनूढासि त्वम् । अत्रैव परिणीय सुखं तिष्ठ भद्रे ! मातामही ते कियदेकाकिनी भविष्यति तवाभावे ? चिन्तय तावत् ! त्वरासंस्खलितवाङ् निहालोऽवदत् ।

कुमारलक्ष्मणपरित्यज्यमाना धरानन्दिनी सीतेव महुली प्रमदाजनोचितामपत्रपामपहाय कौलीनञ्च व्याधूय कराञ्जलिपिहितमुखी करुणकरुणं रुरोद । तस्याः प्रगाढवेदनामवलोक्य नतोन्नतमनस्काः कितववृत्तयो मित्रजना अपि तस्यां दयमानाः प्रह्वीभूताः । अश्रूणि प्रमृज्य विरहविधुरा कपोतीव महुली पुनर्जगाद ।

—भो, यद्येवं तर्हि कथं मामुपच्छन्दितवानसि यत्त्वां स्वदेशं नेष्यामीति ।

त्रपानिषद्वरे निलीनो निहालः । रहोमन्त्रणं महुली प्रकटितवती । नूनमनेन निहालो मित्रजनसमक्षमेव लघूकृतः । दुःस्थितिमनुकूलयन्नसौ जगाद—महुलि ! तदासीत्परिहासविजल्पितम् !

यात्रा विलम्बिताऽभूत् । क्व महुलीसंवादानां परिसमाप्तिः ? सुहृदोऽपि महुलीनिर्बन्धमवेक्ष्य निहालं प्रेरयामासुः सहानयनाय । उभयोः प्रीतिबन्धमक्षिलक्ष्यीकृत्य समेषां मात्सर्यमपगतम् । सर्वेऽपि महुलीस्वीकरणपक्षधरास्सञ्जाताः ।

समुत्प्लुत्य महुली वाहनमधिरुरोह । सैनिकानां चिरप्रतीक्षिता स्वदेशयात्रा समारब्धा । समेषां मनस्सु कुटुम्बिसमागममूलो हर्षसम्भारो लोचनेषु च वियुक्तसुहृत्स्मृतिसमुत्थाश्रुराशिरासीत् ।

(४)

निहालागमनवृत्तात् प्रागेव तदूढप्रियान्तरवृत्तं गोरापटीमाससाद । पण्डितप्रकृतिः पितृचरणो नियतिनटीचर्चरिकां साध्ववगम्य न मनाक् विकृतिमापन्नः । आसीत्तस्य चेतसि—त्रिदेवानपि क्वचिन्मदयति भगवान् मन्मथः । तर्हि का कथा हतभाग्यस्य भावशाबल्योद्भ्रान्तस्य अनियन्त्रितहृषीकहयखलीनस्य निहालस्य ! वृत्तं परमार्थतोऽज्ञात्वा न युक्तं पुत्रपात्रत्वविनिन्दनम् ।

परन्तु वृत्तमिदं निशम्य भृशमुत्तताम निहालगृहिणी । पुटपाकप्रतीकाशाऽसौ ददाहान्तर्दाहेनैव । कीचकायमानानां दुर्भावानां घस्मरसंघर्षणैः समुत्पन्ना व्यथाग्निज्वालाऽरण्यानीमिव तां भस्मीचकार । युयुत्सुरसावतस्थे ।

एवं स्थिते सति कुटुम्बिजने वराको निहालपाण्डेयः प्रस्थानात् पञ्चविंशतितमे दिवसे पितृगृहमाससाद । प्रविष्टमात्रमेव ग्रामे कुतुकिनो बालका देशान्तररमणीदिदृक्षवः, कपटनाट्यसूत्रधारिणीभूताभिर्भ्रातृजायाभिः रहस्यगोपनशपथपुरस्सरं सकूटोप-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देशं सम्प्रेषिता मनोभवभावसंवेदनक्षमाः समधिकवयसः कुमार्यः, स्नेहाचारमभिनयन्त्योऽलीकार्जवं प्रदर्शयन्त्यश्च जरठा मातृकल्पा नार्यः, प्रच्छन्नरसिकाश्च ग्रामवृद्धास्तमन्वयुः ।

अन्तरायभूतांस्तान् सर्वान् सस्मितं सरणामं माशीर्वचनं सकुशलानामयवार्तां यथोचितमतिक्रम्य निहालः स्वभवनमाजगाम । पितुश्चरणावभिवन्द्य जननीं पुत्रदर्शनकातरामश्रुस्नातां प्रपेदे । निहालमनुयान्ती महुल्यपि यन्त्रचालितशालभञ्जिकेव निहालाचरणमेवानुकुर्वती तान् सर्वान् प्रणनाम । भवनद्वारि महान् जनसम्मर्दः सञ्जातः । समेषां दृष्टिर्महुल्युपर्येव केन्द्रिताऽभूत् । निहालस्तद्रहस्यं न जज्ञ इति न। परन्तूचितावसरं प्रतीक्षमाणोऽसौ तूष्णीमुपगतः ।

कुटुम्बिभिर्ग्रामवासिभिश्च सार्धं तास्ता वार्ताः सम्पादयतो निहालस्य प्रदोषो जातः । मध्ये मध्ये स्फुटमशनपेयजातमपि गृहीतं सर्वैः । पुत्रौ निहालस्येदानीमपि चिरकालिकापरिचयवशात् संत्रस्ताविव दूर एव तस्थतुः । महुल्या सस्नेहं सचुत्कारमुपच्छन्दितावपि न समीपमाजग्मतुः । केवलं प्रहसन्तौ गृहान्तर्बहिर्गतागतं चक्रतुः ।

घनीभूता रात्रिः । यावच्छक्यमुपक्रुश्य शृगाला अपि मौनमभजन् । महुलीविषयिणीं चर्चामान्तराह्लादैः प्रतीक्षमाणाः प्रातिवेशिकास्सम्प्रति नैराश्यमनुभवन्तः पुनरागमिष्यामो वयमिति कूटप्रणयैर्मन्त्रयमाणाः प्रतस्थिरे । सर्वमिदानीं निर्मक्षिकं जातम् । धीरगम्भीरस्वरेण पिताऽवदत् ।

—निहाल ! अर्धाङ्गिनीयन्ते ?

—तात ! मा मैवम् । रंगूनप्रवाससखीयं महुली । सर्वथाऽनाथाऽसहाया च। मया बहुशो निरुद्धाऽपि निर्बन्धपरायणा सार्धमाजगाम । निहालोऽवदत् ।

अकस्मादेव पण्डितचित्तूपाण्डेयस्याननद्युतिरवर्धत । असीत्तस्य मनसि—हा देव ! कियदपराद्धम्मयाऽऽचारपूतं स्वपुत्रं विना प्रमाणमेवान्यथा सम्भाव्य ! तत्केन विधिना मनःपापस्यास्य प्रायश्चित्तं करिष्यामि ? एवमादि चिन्तयन्नेवासौ निहालं पुनः पप्रच्छ ।

—निहाल ! ब्राह्मणकन्येयम् ?

—तात ! क्व भारतेतरदेशे हिन्दुधर्मानुकूला वर्णव्यवस्था ? नेयं ब्राह्मणकन्या । तथापि भारतसन्ततिरियमिति वक्तुं समीहे । यतो हि पितृचरणोऽस्या भारतादेव द्रव्यार्जनार्थं रंगूननगरं गतवानासीत् । तत्र एव वर्मादेशीयां कामपि युवतीं परिणीय स्थिरतां प्रपेदे । तयोरेव कन्येयं महुलीनाम्नी । भारतीयां भाषामवगच्छति, वक्ति च ।

—एवम् ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—अथ किम् ! तात ! पृच्छतु भवान् यत् किञ्चित् । निहालस्तातपादं सविनयमनुरुरुधे ।

—वत्से ! महुलीनामासि ? चित्तूपाण्डेयः पृष्टवान् ।

—अथ किम् ! सस्मित महुली प्रोवाच ।

—किमर्थमत्रागतासि स्वदेशं प्रविहाय ? किं पित्रोः स्मृत्या न भृशं व्यथिष्यसे ?

—तात ! को नु खलु मां स्मरति ? जन्मदाता तातो दिवङ्गतः । माता च मम पुनर्व्यूढा केनचित् । मयि स्निह्यन्ती मातामही चापि अद्य श्वो वा पञ्चत्वमुपैष्यति ! तात ! अस्मिन्ननेहसि सर्वथा एकाकिन्यस्मि संवृत्ता । तस्मादेव भारतं समागतास्मि । तात ! भवन्तं परिचरिष्यामि । भृत्यभूता सर्वमपि गृहकार्यजातं करिष्यामि । न भवन्तं पीडयिष्यामि । एवमादि कथयन्त्येव महुली बाष्पगद्गदकण्ठतया नाग्रे किञ्चिद्वक्तुं शशाक ।

पण्डितचित्तूपाण्डेयः प्रह्वीभूतो महुलीवचनोपन्यासं निशम्य । चिचिन्तासौ—निश्चञ्चमनवद्यचरिता सौजन्यसंवलिता चेयं कन्या । महतीं विपत्तिमुपगता । तदेनामत्रानयता निहालेनोचितमेव सम्पादितम् । सस्नेहमसावदत्—

वत्से ! महुलि ! निर्वृता भव । स्वभवनमेवागतासि । पराम्बा सर्वं मङ्गलमेव विधास्यति । निहालस्ते सर्वमपि प्रबन्धं सम्पादयिष्यति । गच्छ गृहान्तरम् ।

महुलीं प्रति पितृव्यव्यवहारमवलोक्य निहालो निर्वृतिं प्रपेदे । तस्य हृदयं सर्वथाऽऽश्वस्तं व्यपगतभारञ्च जातम् । परन्तु किमेतावता ? पारमार्थिकं वृजिनन्तु क्वचिदन्यत्रासीत् । महुलीं दृष्ट्वैव निहालभार्या पञ्जरबद्धा व्याघ्रीव नृशंसप्रकृतिः सञ्जाता । नारी न कथमपि नार्यन्तरं सहते । पतिः कामपि युवतिं कियद्भिरेव कौशलैः प्रख्यापयेन् ममेयं भगिनीति ममेयं सखीति ममेयं परिचारिकेति वा, परन्तु निसर्गादेव सापत्न्यभीता पतिचरितशङ्किनी भार्या तां वल्लभाङ्कशायिनीमेव मन्यते । का कथा पुनः प्रोषितस्य ? प्रवासे सति किन्नाम नियंत्रणं कौलीनभयं वा ? स्वच्छन्दो नायकः सन्धिन्यभिमतो वृषभायते । अवश्यमेव रतिसुखास्वादकृतार्थितेयं कृष्णमुखी पिशाचीव स्वामिनम्मेऽभिभवतीति निर्भरं निश्चिकाय निहालस्य भार्या ।

सप्ताहं यावदुभयोः साहचर्यं न जातम् । दिवा कुटुम्बिजने गतागतं कुर्वाणे सति सङ्गमस्सर्वथाऽसम्भव आसीत् । रात्रिरेवैका शरणमासीद्रहोवार्तां सम्पादयितुं दयिताकोपानलं प्रणयगपथसान्त्वनादिभिर्निर्वापयितुमात्मचरितनैर्मल्यञ्चानुनयैः प्रमाणयितुम् । परन्तु विहितेष्वुपायनिचये निहालोऽवसरं न लेभे । कोपना भार्या सम्पन्ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्येव कुटुम्बिजनभोजनकर्मणि स्ववासकक्षकवाटमन्तर्निगृह्य दृढमर्गलितञ्च विधाय विषसम्मूर्च्छिता कालभुजगीव दीर्घमुष्णं निःश्वसन्ती व्यथोच्छूनहृदयाऽवतस्थे। समेषां रोगाणां प्रतीकारो वर्तते। शङ्काया: पुन: किमौषधम् ?

निहाल: सर्वमवगच्छन्नासीत्। भार्याभ्रमं कथमपनयेदित्यसावपि नितरां चिन्तयतिस्म। एवं चिन्तयत्येव तस्मिन्नवसरो लब्ध:। दारकौ क्रीडनार्थं बहिर्गतौ। जनन्यपि प्रतिवेशे कस्मिंश्चिदुत्सवे गतासीत्। तातपादोऽपि सत्यनारायणव्रतकथां वाचयितुं यजमानगृहे तिष्ठति स्म। अन्येऽपि सदस्या: प्रायेण गृहाद् बहिरेवासन्।

निहालो निर्विशङ्कं भार्यावासकक्षं प्रविवेश। तं दृष्ट्वैव पल्यङ्के शयानाऽसौ झटित्युत्तस्थौ। निहालो वाङ्माधुरीमुपयुञ्जन्नवादीत्—किमिदं पश्यामि ? कीदृशी संवृत्ताऽसि ? इदमेव त्वत्कृतं पञ्चवर्षानन्तरमुपावृत्तस्य मेऽभिनन्दनम् ? काचिद् दीनाऽसहाया युवतिर्मया सार्धमिहागतेतिमात्रमेव पश्यन्ती वज्रपातप्रभिन्नासि ? कथय, न मयि ते विश्वास: ?

—यामानीतवानसि तामेव गच्छ। एतत्सर्वं तामेव श्रावय। अस्मात्परं न किञ्चिदवैमि। रोषाग्निदग्धा पत्नी प्रोवाच।

—राज्ञि ! चिन्तय तावत्। आवयो: कलहं विज्ञाय किं वक्ष्यन्ति जना: ? विद्युदिव प्रवृत्तिरियं निखिलेऽपि ग्रामे प्रचरिष्यति। अलं तिलं तालीकृत्य। सर्वथा त्वन्निष्ठोऽस्मि। स्वप्नसन्दर्शनेष्वपि तवैव सङ्गमनं पश्यता मया पञ्चवर्षाणि व्यतीतानि।

—केयं दास्या: पुत्री ? इमां पुंश्चलीमत्रानयता प्रागेव परिणाम: कथं नावगत: ? कृष्णमुखी कुवीर्यजातेयं केन सम्बन्धेन त्वया सह सम्बद्धा ? कज्जलावलिप्तं मम मुखं जातं तवानेन दुष्कर्मणा।

—यदि त्वं मामन्यथा नावगच्छसि तर्हि का मे हानि: ? लोकप्रलपनैर्मे किं खल्वपक्रियते ? विश्वसिहि तावत् सुचरिता महुली ! तव परिचारिकेति कृत्वैव मया सहागन्तुमङ्गीकृता।

—चर्विता त्वया लज्जा। पीतो वंशाभिमान:। भक्षितञ्च दाक्षिण्यम्। तस्या रण्डाया इयान् पक्षपात: ? कस्मात् ? पञ्चवर्षाणि यावत् तव शय्याम् उष्णयन्ती पत्न्यभावमपूपुरत् ? अस्मादेव हेतो: ? असंयतमुखी पत्नी प्रोवाच।

निहालस्य धमनीषु रुधिरम् उद्वेलितमिवासीत्। एवंविधदीर्घदीर्घतरवियोगावधेरनन्तरं प्रियतमां नेदिष्ठामवाप्य तस्य भोगेच्छा दुर्वारतया बलवती जाता। चिन्तितं तेन—भार्याप्यवश्यमेव मदङ्गसङ्गसुखमवाप्य महुलीवृत्तं विस्मरिष्यति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नूनं रतिसुखान्तो मानिनीनां मानः। सम्प्रत्ययमेव प्रसादनोपायः। एवमादि मनसि चिन्तयन्नेव निहालः श्लक्ष्णया रसपेशलया वाण्या कोपनां दयितां प्रसादयितुकामस्तदालिङ्गनार्थं बाहू प्रसार्य जगाद।

—भवतु। एहि तावत्। पल्यङ्कोपरि शयित्वैव सर्वं ते सशपथं कथयिष्यामि।

परन्तु दुश्शीला कल्मषाक्रान्तहृदया पत्नी शिलेव संवेदनशून्या जाताऽऽसीत्। द्वेषमात्सर्यशर्करिले तन्मनोभूमिक्षेत्रे क्व कन्दर्पबीजप्ररोहः? सापत्न्यघर्षितं विनष्टमासीत्तद्विरंसुत्वम्। स्त्रियोचितः शीलसमुदाचारोऽपि व्यापगत आसीत्।

बाहुमूलं स्पृशन्तौ चिरपरिचितौ रतिसुखसहायपरौ दयितबाहू कराग्राभ्यां दूरे समुत्क्षिप्य चुक्रोश निहालपत्नी—

अपसर! जुष्टभक्ष्यमशित्वा प्रत्यग्रशुचिपक्वान्नमभिलषसि! इतः परं मच्छरीरगन्धमप्याघ्रातुं न शक्ष्यसि। नामशेषोऽसि मत्कृते। वरं वैधव्यं न पुनः कामकीटस्वीकरणम्। किमत्रगत्य...

वाक्यपूर्तेः प्रागेव निहालजरठकरतलचपेटाघातः पत्न्याः कपोलमण्डलोपरि पपात। कठिनसैन्याभ्यासवशाद् दम्भोलिवस्मरतामुपेतः क्रोधावेगाच्च सन्धिकजवमुपपन्नोऽसौ प्रहारः कोमलाङ्ग्याः पत्न्या.. कृते सुदुस्सह एवासीत्। क्रन्दन्ती सा भूमौ पपात। जगर्ज निहालः।

—कालसर्पि! पतिते! बुद्धिस्ते भ्रष्टा? आत्मानं गङ्गाजलं मन्यसे मां च कुल्यासलिलम्? किमहं सत्यधर्मशीलावतारस्य पितृचरणस्य प्रतिष्ठां नावगच्छामि? स्वकुलपरम्परायाश्चिन्ता किं न मां बाधते? भृशमवबोधयामि। तथापि दुर्बुद्धौ ते न प्रविशति सत्यम्? स्फुटितमस्ते भाग्यम्। त्वं किम्मामपमंस्यसे? अद्यप्रभृत्यहमेव त्वां जर्जरोपानहमिव परित्यजामि!

सर्वमवसितम्! अस्फुटं परिदेवमानां भूमौ लुठन्तीं कर्कशां भार्यां शून्ये वासगृहेऽवहाय दग्धहृदयो निहालो भवनाद्बहिराजगाम।

(५)

सैव रात्रिः! स एव घटनाक्रमः। सर्वेऽपि कुटुम्बिनस्समायाताः। स्नुषां दृष्ट्वा श्वश्रूःज्ञातवती यत् किञ्चिद् दुर्घटितम्। परन्त्वसकृत्पृष्टाऽपि निहालवधूः न किञ्चिद् बभाषे। केवलमश्रूणि पातयामास। रात्रौ चुल्ली न प्रज्वलिता। न भोजनं पक्वम्। दारका भुक्तावशिष्टं पूर्वाह्णिकमेव भक्ष्यजातमशित्वा प्रसुप्ताः। गृहपतिः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डितचित्तूपाण्डेयोऽद्य रात्रौ गृहं नागन्ता। एवं प्रतीयतेस्म यथा कश्चित् प्रेष्ठो जनो गृहस्य सहसा दिवङ्गतः।

एभिरेव कतिपयदिवसैर्महुल्यपि निहालगृहे स्वस्थिति साधु सम्यक् चानुभूतवती। इदानीं सा ज्ञातवती यत्तस्या अत्रागमनेन वराको निहालः कां दुर्दशामापन्नः। भारतीये समाज एतत्सर्वमपि भवति, पत्युर्जीवनमेवं पत्न्यायत्तं जायत इत्यपि महुली सर्वप्रथमं जीवने पश्यन्त्यासीत्। तन्नयनसमक्षन्तु वर्मादेशीयः समाज आसीत् यत्र पुरुषा जीर्णानभीष्टवस्त्रखण्डमिव कलत्रं परिवर्तयाञ्चक्रुः। स्त्रियोऽपि पुष्पात्पुष्पमुपयान्त्यो मधुमक्षिका इव पुरुषान् विजहुः।

महुली पश्चात्तापविधुराऽऽसीत्। नूनं तया महदपकृतं निहालकुटुम्बस्य। निश्चप्रचं साऽभूदमङ्गलकारिणी निहालपत्न्याः कृते। परन्तु किमिदानीं प्रतिकर्तुं युज्यते! रंगूनप्रत्यावर्तनं सर्वथाऽसम्भवम्। अन्यत्र क्वापि गमनं पलायनं वापि नोचितम्। अपरिचितस्समाजः। न कोऽप्यात्मीयो न वा संरक्षकः। केवलमेतावदेव सम्भवं यदसौ नितरां दविष्ठा स्यात् निहालनो येन तत्पत्न्या मानसं निर्विशङ्कं जायेत।

स्वदिनचर्यां महुली निश्चिकाय। ब्रह्मवेलायामेव समुत्थाय प्रभातात्प्रागेव नित्यकर्माणि सम्पाद्यासौ निहालपितुः स्नानार्थं कूपात् जलमाकृष्य कुम्भान् पूरितवती। ततश्च बहिर्द्वारभूमिमाढकीमार्जन्या संस्कृत्य पूजाभूमिञ्च धेनुगोमयेनोपलिप्य क्षुरप्रं वेण्विषीकानिर्मितं पिटकञ्चादाय पशुभक्षणनिमित्तं वाससंहरणार्थं क्षेत्रेषु गच्छति स्म। ततश्चाशित्वा मध्याह्नं यावद् विश्रम्य पशुभक्ष्यद्रोणीषु जलं पूरयतिस्म। तान् नैकवारं बुसादिकं भोजयतिस्म। एवं हि आदिवसं निखिलव्यापारव्यापृता सती प्रदोषे समागत एव विश्रमं लभते स्म।

तन्मनोविहगो वारं वारं तां प्रेरयतिस्म निहालं सन्द्रष्टुम्। निहालेन सार्धं मन्त्रयितुं, निहालपत्न्या सार्धं किञ्चिदालपितुं, स्वार्जवं प्रकाशयितुञ्च। परन्तु पञ्चषेष्वेव दिवसेषु यदनुभूतं तया तेन साध्वसवशात् न किञ्चित्कर्तुं शशाक। सावकाशा स्वकुटीर एव तस्थौ। निहालस्य कनीयान् पुत्रो मातृनिर्भर्त्सनरहस्यमनवगच्छन् कदाचिदुत्कण्ठावशादेव महुलीसमीपमागच्छतिस्म। महुली सत्यप्यप्रजाता समग्रमपि संस्कारानुप्राणितं वात्सल्यं तदुपरि वर्षितवती। प्रणयबुभुक्षुर्माणिकको महुलीमतितरामाचकाङ्क्ष। एतत्सर्वमपि निहालपत्न्यै न मनागरोचत।

अद्यापि महुली स्वजीवनघटनाचक्रं स्मरन्ती काष्ठशय्योपरि शयाना तिष्ठतिस्म। जलदागमतटिनीव साऽपि नितरामशान्ताऽऽसीत्। यौवनसलिलप्रवाहस्तद्धैर्यपुलिनयुगलं प्रसह्य भञ्जयन् तां सागरसङ्गमनदिशि नयतिस्म। परन्तु कोऽसौ सागरः? निहालो नाम, यस्यासोदसौ प्रथमदर्शनादेवारम्य गुणनिर्जिता दासी?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

येनाभुक्ताप्यसौ कामपि विलक्षणामेव भोगतुष्टिमनुभवतिस्म ? यो हि तद्धृदयस्पन्दनं तन्नयनकान्तिस्तत्स्वप्नसन्दर्शनलक्ष्यभूतो राजदारकस्तज्जीवनसर्वस्वम् ? वहि नहि। कथमिदं सम्भवति ? निश्चप्रचमसौ चन्द्रं स्वायत्तीकर्तुमियेष यो हि ज्योत्स्नाधिकारे तिष्ठति ? आः दैव ! किं कृतं मया मूढया ? स्वयमेवामन्त्रितं स्वदुर्भाग्यम् ?

घनच्छन्नदुर्दिनमिव सञ्जातं महुलीनयनयुगलम्। नेत्रविगलिताश्रुसन्ततिभिः क्लिन्नं जातं कञ्चुकम्। सविक्कं निर्भरं रुरोद महुली। को नु खलु सान्त्वयेत् ? कस्यासौ पुनः स्वजनीभूता ?

अकस्मादेव कपाटताडनध्वनिरश्रूयत। चकम्पे कयाचिदनभीष्टशङ्कया महुली। परन्तु सर्वथा सुरक्षिते निहालगृहपरिसरे को नु खल्वसाधु चेष्टितुं क्षमते ? तत्किं कनीयान् दारको निहालस्य ? नहि नहि ! कथमसौ मातुर्विकटबन्धनोपायं खलीकृत्य निशीथप्राये निशाकालेऽत्रागन्तुं शक्नोति ? तत्को नु खलु भवेत् ? अवश्यमेव मात्सर्य-ग्रस्ता विवेकभ्रष्टा निहालगृहिणी सपत्नीभूतां तां नामशेषीकर्तुं प्रगाढायां रजन्यां दरित्रमादाय समायाति !

कपाटताडनध्वनिरुत्तरोत्तरं वर्धिष्णुः। साहसं समाहृत्य दण्डकाष्ठञ्चैकं हस्ते निधाय महुली कवाट निकषाऽऽजगाम सरोषं पप्रच्छ च—कोऽस्ति भोः !

—महुलि ! द्वारमुद्घाटय !

चिरपरिचितोऽयं स्वरः सर्वथाऽशङ्कनीय एवासीत्। नीहारवर्षणार्द्रा पुष्पवती मल्लीलतेव महुली न पुनः किञ्चित् पप्रच्छ। झटित्येव परिघमपनीय कपाटयुगलमसौ समुद्घाटितवती। कुटीराभ्यन्तरमागत्य निहाल आत्मकराभ्यामेव कवाटौ पुनः पिधाय परिघं स्थापितवान्। सर्वथा हतप्रभ इव, मुषित इव, विक्षिप्त इवासौ समलक्ष्यत। तस्य तां दयनीयां दशामवलोक्य, कतिपयक्षणेभ्यः प्रागेव महुलीमनसि बलादारूढो निहालकर्तृको व्यभिचरणभावस्सहसाऽपयातः। महुलीनेत्राभ्यामविरलाश्रु-धारा पुनः पतितुमारेभे।

— वल्लभ ! किमभूत् ? कथमेवं श्रीहीनः परिलक्ष्यसे ? किमधरोत्तरमसह्यं किञ्चिज्जगादार्या ? अकस्मादेव महुलीमुखात् निहालस्य कृते हृदयगह्वरे चिरकालेन प्रयत्नैः संरक्षितो वल्लभशब्दो निराजगाम।

आत्मनियन्त्रणेऽशक्नुवन् निहालोऽबोधबालक इव महुलीं प्रगाढालिङ्गनैराबध्य मुक्तकण्ठमरोदीत्। उभावपि काष्ठपल्यङ्कोपरि निषेदतुः। परिदेवमानाऽपि महुली निहालव्यथां प्रगाढामवगम्य स्वाङ्गुलीभिस्तन्निबिडकेशराशिं सारयन्ती मुहूर्तं यावत् तस्थौ। तदनन्तरं प्रीतया वाण्याऽपृच्छत्।

— न मह्यं स्वव्यथां निवेदयिष्यसि ? अहमस्मि ते चरणधूलिस्तव सेविका !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामिन् ! ब्रूहि तावत् किं जातम् ? त्वत्प्रसन्नतायै प्राणानपि परित्यक्तुं क्षमे । शापितोऽसि मया सत्यमाख्यातुम् ।

घनीभूता महुलीवणयैर्निहालस्य मनोव्यथा । स्वशीर्षं तदुत्सङ्गे निधायासौ सन्तापघर्घरगिरा जगाद ।

—महुलि ! सर्वथाऽशरणोऽस्मि सञ्जातः । हतभाग्याऽसौ शुनी मां त्वयि समासक्तं मन्यमानाऽद्य कदर्थितवती । गृहागमनक्षणादेव कालकूटनिचितया दृशा मामवलोकयति । पापपङ्के पतितायास्तस्याः पतिविद्वेषिण्या नास्ति सम्प्रति समुद्धरणोपायः । इतः परं न सा मेऽर्धाङ्गिनी.....

क्षणं यावत्तूष्णीमास्थाय पुनः प्रोवाच निहालोऽधैर्यविसंष्ठुलया वाचा ।

—महुलि ! ममाभ्यन्तरेऽग्निः प्रज्ज्वलति । पञ्चवर्षेभ्योऽयमग्निरनिर्वापितः सन् प्रज्ज्वलति । अनेन दुर्धर्षभीष्मकृशानुना दह्येऽहम् ।..... ..... महुलि ! मम प्राणवल्लभे ! निर्वापय दाहाग्निमिमम् । सम्प्रति त्वामन्तरेण नाहं जीवितुं शक्नोमि । अद्यप्रभृति त्वमेव मम प्रिया, मम भार्या, मम राजमहिषी, मम जीवनसर्वस्वम् । महुलि ! मामात्मीयं कुरु ।

एवमादि मन्त्रयमाण एव निहालः सिन्दूरशिटकात् छोटिकामितं सिन्दूरमादाय महुल्याः सीमन्तं पूरयामास । महुली चित्रलिखितेव सर्वमेतत् पश्यन्ती न किञ्चिदवादीत् । शनैरुत्थायासौ शीर्षोपरि नातिदीर्घावगुण्ठं विधाय निहालचरणौ पस्पर्श क्षालितवती च तौ नयननिर्गतसन्तप्तवारिभिः ।

चिरवियुक्तयोर्द्यावापृथिव्योस्सङ्गमो जातः । स्वतःप्रामाण्येनैवोभौ परस्परमाबद्धौ दाम्पत्यबन्धनैः । को नु खलु ददर्श यत्तस्मिन्नेव लघुकुटीरे द्वयोर्देशयोर्हृदयमेकीभूतम् !

ग्रीष्मान्तबलाहक इवाभिवृष्य निहालोऽनिर्वचनीयां निर्वृतिं प्रपेदे । महुल्यपि निदाघज्वालावलीढा मेदिनीव वर्षाजलैराश्च्योतनसुखमवाप्य सन्तापविरहिता जाता । जीवनाभिप्रायमसावद्यैवावगन्तुं शशाक ।

महुलीनिहालयोस्सम्बन्धः शनैः शनैः प्राकाश्यमुपगतः । व्यतीते किल मासावधौ कस्मिंश्चिद् दिने पितृचरणो निहालमाहूय सार्जवं पप्रच्छ—निहाल ! यच्छृणोमि किं तत्सत्यम् ?

— तात ! सम्यक् श्रुतं भवता । नताननो निहालोऽवदत् !

—पूर्वपत्न्याः प्रतिष्ठा त्वयाऽधरीकृता ? अभिशापस्तस्यास्त्वां धक्ष्यतीत्यपि न चिन्तितम् ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—तात ! कीदृशी पत्नी ? याऽकारणं पतिं विद्वेष्टि, तच्चरितमाशङ्कते, शपथमपि कूटाभिनयं मन्यते··· प् प् पत्या सार्धं शयितुं न वाञ्छति···· किमसौ पत्नी ? तात ! भगवतीं पराम्बामेव प्रमाणीकृत्य महुलीं भार्यारूपेण स्वीकृतवानस्मि ।

हृतप्रभोऽवतस्थे पण्डितचित्तूपाण्डेयः । नासौ किञ्चिदवोचत् । केवलं निहालस्कन्धोपरि दक्षिणकरतलं निधाय मूकसान्त्वनया तमभिननन्द । तस्य मौनमेव सर्वमाचचक्षे । पितुराशिषमवाप्य निहालो निर्व्यथो जातः ।

(६)

ततश्च वर्षद्वयं समतिक्रान्तम् । सम्प्रति पितृचरणो यशश्शेषतामुपगतः । जननी खल्वद्यापि जीवति । महुली तस्मिन्नेव कुटीरे निवसति । निहालस्तामर्धाङ्गिनीं चकार तथापि भार्याप्रतिष्ठया तामलङ्कर्तुं न शशाक । सर्वत्रापि कौलीनं दुष्प्रचारो विरोधस्वरश्च ! पूर्वपत्न्या बन्धुजनाः प्रतीकारभावनया निहालवैरिणस्सञ्जाताः । कुटुम्बिजना अपि निहालसाध्वसवशात्प्रत्यक्षमादरस्नेहादिकमभिनयन्तोऽपि दृढं द्विषन्त्येव ।

पूरितप्रायोऽपि महुल्युत्सङ्गो रिक्त एव समजनि । गर्भस्रावस्सञ्जातः । प्रत्यवायबहुलेऽपि, कौलीनविकलेऽपि, स्वजनविरोधावरुद्धेऽपि जीवनपथे महुलीप्रणयचन्द्रिकापरिस्नातो निहाल आत्मानं परमसुखिनमेव मेने ।

निहालमहुलीप्रणयव्यतिकरो गोरापटीमतिक्रम्य निखिलेऽपि जनपदे ख्यातेः परां कोटिमधिरूढः । निहालं प्रति महुल्या निष्ठा, तस्याः शान्तमधुरस्स्वभावः, निहालपुत्रौ प्रति तस्या जन्मदातिशायि वात्सल्यं, गृहवधूचितं तदाचरणमिति सर्वमपि गोष्ठीचर्चाविषयतामुपगतम् । प्रत्यक्षं विद्विषन्तोऽपि जना महुलीं प्रशशंसुः ।

सम्प्रति महुली गृहाद्बहिर्न गच्छतिस्म । निहालस्यायमेवादेश आसीत् । अकारणवैरिनिचितो ग्रामपरिवेषः । गरलमुखाः पथि पथि प्रभवन्ति । कोऽपि किञ्चिदपि क्षुद्रमभद्रं वा व्याहर्तुं शक्नोति । तेभ्यो नीचेभ्योऽवसर एव न प्रदातव्य इति निहालश्चिचिन्त ।

यदा कदा जननी महुलीं सन्द्रष्टुं कुटीरं समागच्छतिस्म । महुली विविधैरुपायैः श्वश्रूं संसेव्य तदाशिषं नितरामवाप । गृहाभ्यन्तरमसौ न प्रविवेश स्वामिनिदेशवशात् । परसुखासहिष्णवो हि नार्यः । सौहार्दमभिनीय रहस्यानि निर्गमयन्ति पश्चाच्च तैरेव दिव्यास्त्रभूतैः प्रहृत्य मर्माणि भिन्दन्ति । निहालगृहे पुनः स्त्रीणां महान् समवाय आसीत् । पितृव्यपत्न्यो भगिन्यः पितृष्वसारः षड्यन्त्रसंविधानक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रङ्गस्थलीभूताश्च तत्तत्पक्षीया भृत्याङ्गनाः—सर्वा एकस्मिन्नेव भवने निवसन्ति स्म। प्रतिदिनं प्रतिक्षणं तत्र किमपि प्रच्छन्ननाट्यं प्रवर्तमानमेवासीत्।

महुल्यपि सर्वं जानातिस्म। सा कदापि गृहाभ्यन्तरं न गतवती। परन्त्वद्य नियमस्तस्याः खण्डितः। पञ्चवर्षीयः कनीयान् वत्सो निहालस्य महुलीकुटीरसमक्षमेव क्रीडन्नासीत्। महुली तस्मिन्नतितरां स्निह्यतिस्म। दारकोऽपि महुल्यामासक्तः। मात्रा विनिवारितोऽपि प्रायेणादिवस तदन्तिके निवसतिस्म।

यावदेव बालकः प्रक्षिप्तं कन्दुकमानेतुं कूपाभिमुखं ययौ तावदेव वत्सदर्शनोत्कण्ठिता हम्भारवं विदधती प्रकृत्यैव दुर्मर्षणा धेनुस्तेनैव मार्गेणागच्छन्ती ददृशे। अस्या धेनोरुग्रं स्वभावं महुली साधु जानातिस्म। न सा बालकं, वृद्धं युवानं वा सहते। अदण्डपाणिं वात्यारयेण भीषयति विद्रावयति कदाचित्प्रहरति वा।

तां दुश्शीलां प्रदोषवेलोद्विग्नां धेनुं दृष्ट्वैव दारकं वारयितुं महुली दण्डमादाय दधाव। परन्तु तावता कालेन दारकोऽपि स्वकन्दुकं गृहीत्वा मध्येपथं तिष्ठन्नासीत्। धेनुस्तं निर्दोषबालकं पथप्रत्यवायमवगम्य शृङ्गाभ्यां दूरे चिक्षेप। बिभीतस्सन् बालको निस्संज्ञ इव सञ्जातः। क्षतपर्याकुलं जातं तत्कोमलशरीरम्। रुधिरधारा तेभ्यः प्रावहत्।

तत्सर्वं दृष्ट्वैव महुली निरुपाया जाता। सम्भ्रमवशादसौ क्षणं यावत्करणीयतामपि निश्चेतुं न चक्षमे। किं कुर्यादसौ? प्रवहन्ति बहलासृञ्जि दर्शं दर्शं तद्भयं द्विगुणतां प्रपेदे। आसीच्च तस्याश्चेतसि—मातृसमीपमेव नेतव्योऽयं दारकः। यद्भवतु तद्भवतु, तत्रैव नयाम्येनम्। गृहप्रवेशनियमोऽद्य खण्डनीय एव।

महुली दारकमङ्के निधाय भवनमाससाद। श्वश्रूरेव भवनाद्बहिरायान्ती ददृशे। पौत्रदशां दृष्ट्वा साऽपि विस्मयमाततान। महुली निखिलामपि घटनां श्रावयामास। तावदेव निहालपत्नी स्त्रियश्चान्याः कर्णाकर्णि वृत्तं निशम्य तत्र पुञ्जीभूताः। क्रन्दनकोलाहलध्वनिरुदचरत्। न कोऽपि क्षतविक्षतं दारकं पश्यति न वा घटनाक्रमं ज्ञातुं प्रयतते। सर्वासां दृष्टिर्महुल्युपर्येव पपात।

—हा दैव! प्रागेव पतिम्मे भक्षितवती रण्डेयम्। सम्प्रति पुत्रावपि खादितुमुपक्रमते! जारिणीयं मम सुव्यवस्थितं गार्हस्थ्यं समुच्छेत्तुमेव समागता। आः मातः! किं करवाणि? को नु मम सहायः? गाढं परिदेवमाना निहालपत्नी सगद्गदस्वरं प्रोवाच।

निहालभगिन्यो न किञ्चिदवादिषुः। महुलीं प्रति तासां प्रणय आसीत्। बन्धुपक्षधरास्ताः। परन्तु पितृव्यपत्न्योऽन्याश्च स्त्रियस्तद्विरोधिन्यः। चिरप्रतीक्षितोऽवसरोऽद्य ताभिः सम्प्राप्तः। ताः सर्वाः समेत्य महुलीमेव गर्हयामासुः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

— पिशाचीयं पिशाची ! हा प्रभो ! निहालवध्वा भवनमेव समुच्छिन्नमनया । प्रोवाचैका ।

—इन्द्रजालं विजानाति मातः ! स्वाभिमानिनं हृष्टं पुष्टं युवानमपि मेषीचकार । पश्यत तावत्कलामस्याः ! कापि द्वितीया मंत्रिवती ।

—धिक् धिक् ! कीदृशं कलियुगमागतम् ! वशीकरणोपायं जानाति मायाविनीयम् । प्रथमं वध्वाः पतिं स्वायत्तीचकार पश्चाच्च तत्पुत्रकौ ! या तमसूत तां साध्वीं नाभिजानाति । परन्तु तस्या दुष्टायाः कुटीर आदिवसं क्रीडति ! अदृष्टा काऽप्यवोचत् ।

स्थाणुरिव मौनमास्थाय स्थिता महुली नातः परं श्रोतुं शशाक । मुखमञ्चलेन प्रच्छाद्य प्ररुदती पुनः स्वकुटीरं प्रत्याजगाम । गतायाञ्च तस्यां निहालजननी घटनामामूलात् समुपवर्ण्य सर्वास्ता निर्भर्त्सितवती । तेन सर्वं शान्तं जातम् ।

सायन्तने काले निहालोऽभ्यर्णचरहट्टात् गृहमागतः । भगिनी निखिलमपि वृत्तं तस्मै निवेदितवती । कथा कथा किमाख्यातमिति सर्वमपि त्रयोदशवर्षदेशीया कनिष्ठा भगिनी तमवगमयतिस्म । परन्तु श्रवणमात्रेणैव निहालो घटनाया महुल्यै चुकोप । आसीच्च तच्चेतसि—'कस्मादियं मया विनिवारिताऽपि गृहाभ्यन्तरमगात् ?'

दारकमदृष्ट्वैव प्रलयमेघगत्या कुटीरमासाद्यासौ महुलीं कुटीराद्बहिराचकर्ष ताञ्चाश्रुक्लिन्नमुखीं निरपराधां यावच्छक्यदुर्वचनैः सर्वजनसमक्षमपमेने । यदि नाम जननी द्राक् समुपेत्य तां न वारयेत् निहालो निश्चप्रचमेव तामनाथां परिवेपमानां निर्दयं प्रताडयेत् ।

जनन्या निर्भर्त्सितो निहालस्तामपहाय दारकं सन्द्रष्टुं गृहाभ्यन्तरं जगाम । कर्णोपजापस्समजनि गृहस्त्रीसमुदाये । परन्तु निहालभयवशान्न काऽपि समीपमाययौ । केवलं जननी भगिन्यश्च तमनुजग्मुः । सौभाग्यवशात् क्षतानि नातिगभीराण्यासन् । हरिद्रापलाण्डुसर्षपतैलनिर्मितावलेहोपलेपै रुधिरस्रावो निरुद्ध आसीत् ! दारकः सुखं स्वपितिस्म ।

बहिरागतं निहालं जननी पुनर्निर्भर्त्सितवती महुलीं प्रति दुर्व्यवहारमाचरितुम् । सा तस्याः सेवाभावं, वात्सल्यं, शीलसमुदाचारं, कर्तव्यपरायणतां, स्वामिनिष्ठाञ्च बहुशः प्रशशंस जगाद च—निहाल ! मत्पुत्रक ! तव परिणीता भार्या महुल्याश्चरणप्रक्षालनजलसमतामपि न बिभर्ति । गच्छ, सान्त्वय तां साध्वीम् । अये मूढ ! त्वदेकशरणाऽसौ । त्वद्बलेनैव जीवति । तव पुत्रौ स्वकुक्षिजातौ मन्यते । तव भार्यामकारणविद्वेषिणीमार्यां स्वामिनीञ्चाङ्गीकरोति । कुलवधूरिव गृहे निवसति । किमतः परम् अस्माभिः काम्यते ?

जननीवचनैर्विलक्षितो निहाल आत्मापराधभारभङ्गुरस्सन् कुटीरं प्रविवेश । महुली भूमावेव निषण्णा पल्यङ्कशीर्षखण्डमवलम्ब्य सदैन्यं सवेदनञ्च परिदेवमानाऽ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सीत् । वाञ्छन्नपि निहालस्तां स्प्रष्टुं न शक्तोऽभूत् । निभृतपदैरेवासौ कुटीराद् बहिराजगाम ।

कनिष्ठा भगिनी समासन्नप्राये निशीथे निहालमहुल्योः कृते भोजनमानीतवती । जनन्यपि तावत्समागता । को नु खलु महुलीं भोजयेत् ? निहालो मनस्यचिन्तयत्— नाहं तत्सम्मुखीभवितुमुत्सहे । हन्त, नवनीतकोमलहृदया या केवलं मत्प्रणयासक्त-हृदया सती स्वकीयां जन्मभूमिं परित्यज्य मया सहात्र समागता, मनोमन्दिरे मां प्रतिष्ठाप्य या नितरामानर्च, मत्परितुष्ट्यर्थमेवानभिधाय किञ्चित् स्वामूल्ययौवनमपि मह्यं समर्पितवती - तामेव पापोऽहमव्यथयम् ? आः महुलीप्रतिष्ठारक्षायै मया क्लीवेन किं कृतम् ? न सा समाजे मत्परिणीता स्वीक्रियते । रक्षितेति सर्वैः ख्याप्यते । न सा भवनाभ्यन्तरं प्रवेष्टुं शक्नोति कुटुम्बिजनविरोधवशात् । किमेतावदेव शरणागत-रक्षणौचित्यम् ? सर्वथा धिङ् मामकरुणमसाम्प्रतकारिणं नृशंसञ्च । मया प्रकाशं निर्भर्त्सिता लघूकृता चासावश्यमेव स्फुटितहृदया तिष्ठति । नात्र तस्या जननी, न सखी कापि, न वा मातामही । का नु खलु तस्या मनोव्यथां वण्टयेत् ?

— रूपमति ! वत्से ! गच्छ भोजनमिदं महुल्यै दत्त्वाऽऽगच्छ । निहालस्सस्नेह कनिष्ठां सोदरीमवदत् ।

रूपमती भोजनपिठरं जलमल्लकञ्च गृहीत्वा कुटीराभ्यन्तरं प्राविशत् । तत्सर्वं भूमौ निधाय मन्दस्वरेण प्रोवाच – भ्रातृजाये ! जननी भोजनं प्रेषयते । इदानीं यावन्न मया, न जनन्या, न चापि भ्रात्रा भुक्तम् । तदेहि, भोजनं कुरु । जननी भ्रातरं बहु निर्भर्त्सितवती । सोऽधुनातितरां पश्चात्तपति । तत् क्षमस्व मम सोदरं भ्रातृजाये !

महुली तामचिरोपरूढयौवनां स्निग्धहृदयां दुर्ललितनानान्दरं निर्दयमाश्लिष्य, प्रमत्तेव तन्मुखं चुम्बन्ती, करुणं रुरोद । ततश्च व्याजहार—'सखि ! रूपमति ! नाहमत्र निवत्स्यामि । तव सहोदरस्य मानसं मत्तः पराङ्मुखं जातम् । यूयं सर्वेऽपि मया दुर्भाग्यशालिन्या चिरं पीडिताः कलङ्किताश्च । अहमस्मि समेषामेव व्यथापमान-कारणम् । अतएवेतो गमिष्यामि । याचित्वा खादिष्यामि । कुत्रापि भग्नप्राचीरकोणे रात्रिं क्षपयिष्यामि । येन जनिताऽस्मि स परमेश्वरो मां रक्षिष्यत्येव ।

रूपमती शालभञ्जिकेव तद्व्याहरणं श्रुतवती । तावदेव तस्या दृष्टिः कुटीर-कोणे पपात । वस्त्रपिटकं महुल्याः संयतमासीत् । ससम्भ्रममसौ कुटीराद् बहिरा-गतवती । निःश्वासपरम्परा तस्याः समुच्छ्वसिताऽऽसीत् । जनन्याः भ्रातुर्वा प्रश्ना-त्प्रागेव रूपमती जगाद ।

— मातः मातः ! भ्रातृजायाऽस्मान् विहाय न जाने कुत्र गच्छात ! वस्त्रपिटकं स्वकीयमाबद्धं तया । प्रत्यक्षमिदं मया सम्प्रत्येव दृष्टम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निहालहृदयस्पन्दनं सहसाऽवर्त्त। किंकर्तव्यविमूढोऽसौ सञ्जातः। जननी-नयनसङ्केतमवगम्यासौ झटित्येव कुटीरं प्रविवेश।

सत्यमेव महुली प्रस्थानार्थं बद्धपरिकराऽसीत्। इदानीमपि पल्यङ्कमास्थाय साऽश्रूणि पातयन्ती निष्प्रभाऽलक्ष्यत। निहालस्सप्रणयं तच्छीर्षोपरि दक्षिणकरतलं निदधे। महुली मानेर्ष्यारोषत्रिवेणिकाभूता सार्जवमेव तत्करतलमपसार्य दूरङ्गता। निहालः पुरस्सृत्य तां प्रगाढालिङ्गने बबन्ध तप्ताश्रुक्षालितं जलदागमचन्द्रोपमं च तन्मुखं बहुशश्चुचुम्ब। ततश्च तामात्माभिमुखीकृत्य साधिक्षेपं प्रोवाच।

—मां विहाय गच्छसि ? क्व गच्छसि ?

—..... महुली न किञ्चिद् बभाषे।

—महुलि ! हृदयसिंहासनराजमहिषि ! तृणकल्पस्यापराधस्येदृशो महान् दण्डः ? भवतु, सापराधोऽहमत्र नताननस्तिष्ठामि। यथेच्छं ताडय मां दुर्वचनैःसन्तापय माम्।

निहालो महुलीकराभ्यामात्मानं द्विस्त्रिस्ताडयाञ्चकार। महुली लज्जया प्रह्वीभूय स्वकरौ आचकर्ष। थूत्कृतञ्च भृशं निगीर्य सोपेक्षमवतस्थे, किन्तु न बभाण किञ्चित् ! निहालस्तामुत्सङ्गमधिरोप्य काष्ठपल्यङ्कं निषद्य महुलीकपोलेन स्वकपोलं संघृष्यन् शनैर्जगाद—

मुग्धे ! पोतविहगावावाम्। परस्परं प्रविहाय नावयोः काऽप्यन्या गतिः। महुलि ! यथा जलपोतविहगोऽनन्ताकाशे प्रोड्डीय परिभ्रम्य च विवशीभूय पुनस्तत्रैवागच्छति शरणमन्विच्छन् आवयोरपि सैव स्थितिः। प्रिये ! जलपोतसन्निभमिदं लघुकुटीरम्। इदमेवास्माकं शरणस्थलम्। इदमेवास्माकं प्रणयमन्दिरं प्रिये ! यत्रावाभ्यां प्रणयाधिष्ठातृदेवो भगवान् रतिनाय-कस्समर्चितः। नैतत् परित्यज्य क्वाप्यन्यत्र गन्तव्यम्।

.....प्ररुदती महुली भावावेशवशान्निहालं दृढमालिलिङ्ग। मानस्तस्या अपगत आसीत्। प्रियतमहृदयनैर्मल्यमनुभूय शरन्निशीथिनीवासौ विशदा जाता।

—यदि पुनर्जिगमिषस्येव तर्हि प्रतिष्ठस्व। अहमपि त्वामनुगच्छामि। देशमि-ममपहाय क्वचिदन्यत्र वसतिं करिष्यावहे यत्र न स्यात्कोऽपि प्रत्यवायः। उत्तिष्ठ, गन्तव्यमस्माभिः।

समुत्थितं निहालमावेष्ट्य तनुलतया प्रीतमना महुली तमधिशय्यमुत्तान-मशाययत् कवाटविस्तीर्णे च तद्वक्षसि स्वयं पपात।

सस्मितं प्रोवाच निहालः—मूढे ! बहिर्जननी भगिनी च तिष्ठतः। द्वारं तावत्पिधाय समागच्छ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिंहसारिः

आदिवसं प्रकाशलेखां विकीर्य कुशेशयबन्धुर्भगवान् सहस्रमरीचिमाली रविरिदानीं वारुणीं दिशां प्रतिष्ठासुरासीत् । माञ्जिष्ठरागरञ्जितं पश्चिमाकाशं कुङ्कुममण्डितविटङ्कपीठमिव आयान्त्याः सन्ध्यावधूट्याः सभाजनार्थं सन्नद्धमासीत् । यवद्वीपस्य सिंहसारिसाम्राज्यस्य पट्टमहिषी देवाङ्गनाप्रतियातनाभूताऽनिन्द्यसौन्दर्यवती दिदिशा स्वराजप्रासादस्य वलभ्यां तिष्ठन्ती गहनचिन्तने निमग्नेव समलक्ष्यत । स्वजीवनस्यातीतकथां स्मरन्ती सा बाह्यजगत्प्रपञ्चानुभवशून्येव चित्रितेवात्मज्ञानविरहितेव च समदृश्यत ।

अकस्मादेव भग्ना नीरवता । अपटीक्षेपेण प्रविश्य दुर्ललिता परिचारिका पार्श्वमुपगता हर्षभारविसंष्ठुला च सत्वरं प्रोवाच ।

—जयतु जयतु भट्टिनी! प्रसन्नाः कुलदेवताः, अनुकूलानि भागधेयानि । गन्तेरयुद्धे जयश्रियमविन्दत महाराजाधिराजः । निहतः खलु कडिरीनरेशः कृतजयः, सम्प्रति भट्टिनी निखिलयवद्वीपवसुन्धरायाः पट्टमहिषी जाता !

-- अपि सत्यमिदम् ? कुतः श्रुतं त्वया ? पतिविजयवृत्तश्रवणानन्दमेदुरा साम्राज्ञी दिदिशाऽपृच्छत् ।

—का मृषा भणिष्यति ? भट्टिनी प्रतोलिकामधिरुह्य स्वयमेव राजधान्याः सिंहसारेरामोदसम्भारं निभालयताम् । सर्वत्रापि पौराश्चर्चरिकां नृत्यन्ति, कुङ्कुमपटवासधूलि-पिञ्जरिता दिशा नेदानीं स्पष्टमालोक्यते ।

-- क्व वर्तते भर्ता ? साम्राज्ञी दिदिशा सोत्कण्ठमपृच्छत् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—भट्टिनि ! भर्ता कनीयस्या महिष्या वासप्रासादे विश्राम्यति ।

निरुद्धपयःपूरप्रवाहमिव धारायन्त्रं पट्टमहिष्या दिदिशाया मानसं सहसैव कुण्ठितं जातम् । हृतप्रभा स्तम्भितगतिश्च जाता सा । नियन्त्रणप्रयत्नान् खलीकुर्वन्तः कतिपयलोचनजललवाः सहसैव तस्याः कपोलमण्डलयोरुपरि समपतन् । आत्मानं प्रति भर्तुरौदासीन्यमनुभूय पूर्वानुरागञ्च स्मारं स्मारं दिदिशा सर्वाङ्गसन्तप्ता जाता ।

—किमभूद् भट्टिनि ? अपि सर्वमनामयम् ? शीर्षवेदना बाधते चेत्समुद्रगृहं नयामि । अकस्मादेवान्यथा संवृत्ताऽसि ? परिचारिका स्वामिनीस्नेहवशाद्युगपदेव बहून् प्रश्नान् उट्टङ्कितवती ।

—हञ्जे, न किमपि । गच्छ त्वं, प्रेक्षस्व नागरकौतुकम् । अहमपि स्नानादिभिर्निवृत्ता सती त्वरितमागच्छामि भर्तुरभिनन्दनाय । एवं मन्त्रयमाणा दिदिशा स्वनिवासप्रासादं प्रातिष्ठत ।

स्वनिवासप्रासादमासाद्य पट्टराज्ञी दिदिशा शय्योपरि पपात । उपधानं भुजयोर्निगूह्य घनवृष्टिरिवाषाढकादम्बिनी सा निरर्गलाश्रुसन्ततिं मुमोच । पुटपाकप्रतीकाशा तस्या व्यथा हृदयगह्वरं प्रसह्य ददाह न चाक्रोशधूमं प्रकटितवती । व्यतीतदिवसानां स्मृतिस्तां कोमलाङ्गीं रूपलावण्यप्रतिमां निसर्गत एवोत्तानहृदयां व्रश्चितुमारेभे । अकस्मादेव जीवनपुस्तकस्य प्रथमं पर्णमुद्घाटितमासीत् ।

खिस्तीयद्वादशशताब्द्या अन्तिमं चरणम् । कडिरीनरेशः शृङ्गस्तदा श्रीसर्वेश्वरत्रिविक्रमावतारानिन्दितशृङ्गलाञ्छनदिग्विजयोत्तुङ्गदेवनाम्ना निखिलयवद्वीपं निष्कण्टकं प्रशशास । यवद्वीपस्य पूर्वभागे कविपर्वतनेदीयसि भूभागे तुम्पेलनामकं लघुराज्यमेकमासीत् यत्र यवाधिपतिशृङ्गवशंवदः सामन्तस्तुङ्गुलोपाह्वोऽमृताङ्गः प्रजारक्षणपरायणः प्रशास्तिस्म । दिदिशाऽस्यैव तुम्पेलशासकस्य अमृताङ्गस्य पुरोहितकन्याऽऽसीत् ।

अचिरोपरूढयौवना सैव पुरोहितपुत्रिका कदाचिन् निपुणं निर्भरं वीक्षिताऽमृताङ्गस्य मनोहरिणवागुराभूता । ईषदुद्भिन्नकुवलयलोचना बिम्बाधरोष्ठी बालवशागतिर्मञ्जुहासा दाडिमदशना कृकवाकुकण्ठी मदनचापयष्टिरिव तनुमध्या पार्वणमृगाङ्कमुखी अनिन्द्यरूपलावण्यसमृद्धा दिदिशा भूपतिममृताङ्गं मदनबाणविद्धं चकार । न स निर्भरं खादतिस्म न पिबतिस्म न वा स्वपितिस्म । दिदिशारूपमरन्दमाध्वीभृङ्गभूतः तुम्पेलनरपतिः सर्वथा राजकार्यविरक्तः सञ्जातः ।

परन्तु दिदिशाऽवाप्तिः सर्वथाऽसम्भवाऽऽसीत् । भारतीयवर्णाश्रमधर्मनियन्त्रिते यवद्वीपे क्षत्रियेण ब्राह्मणकन्यायाः पाणिग्रहणं कथमपि सम्भवं नासीत् । अमृताङ्गस्तावत् सद्वंश्यः क्षत्रियोऽपि नासीत् । संशयिताभिजनोऽसौ स्वबाहुपराक्रमवशादेव कडिरीनरेशस्य शृङ्गस्य करुणाकटाक्षसत्कृतः सन् आदौ सामन्तपदवीं पश्चाच्च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम्पेलभूपतित्वमवाप, वेदवेदाङ्गमंत्रतंत्रपारगो राजपुरोहितः सर्वमिदं तथ्यं सम्यग् जानातिस्म ।

किन्तु द्यूते प्रणये च सर्वमेव युक्तियुक्तं भवति । परिणाममनालोच्य अमृताङ्गः कथमपि सदवसरं निभाल्य, तातचरणस्ते राजभवने त्वां प्रतीक्षत इति व्याजेन दिदिशामानिनाय स्वान्तःपुरम् । सकृदागता दिदिशा केलिपञ्जरावरुद्धा शुकीव पुनर्बहिर्गन्तुं न शशाक । कन्यापहरणवृत्तान्तमवगम्य दैन्यसन्तापत्रपाभारादितो राजपुरोहितोऽपि प्रसह्य मृत्युं ववार । तुम्पेलराज्ये महान् जनाक्रोशः समजनि भूपालदुष्कृतिश्रवणानन्तरं परन्तु प्रचण्डदण्डभिया न कोऽपि प्रत्यक्षमतिमर्यादः सञ्जातः ।

अमृताङ्गोऽपि शनैः शनैः स्वप्रणयनिवेदनैः पश्चात्तापप्रकटनैः, दुर्वाररागबन्धनानुभूतिज्ञापनैः रूपलावण्यगुणाभिशंसनैः बहुभिश्चान्यैः कान्ताप्रसादनोपायैः पुरोहितात्मजां दिदिशां स्ववशे चकार । अमृताङ्गप्रणयनिष्ठाभिभूता दुर्लभवैभवविलाससिन्धुसलिलस्नाता साऽपि तातमृत्युसन्तापं विस्मृत्य सर्वतोभावेन तुम्पेलभूपतिं स्वीकृतवती । तथापि वंशाभिमानगौरवं वन्द्यतातनिधनकारणभूतं मध्ये मध्ये तस्या हृदये ज्वालामुखभूधरसन्निभं द्वन्द्वं जनयामास । एवम्भूते सति दुर्धर्षरोषानलपरीता दिदिशा कालपन्नगीव स्वापहारिणं स्वपितृघातिनं व्यंसकप्रणयिनममृताङ्गं दष्टुमियेष । कदाचित्सा पश्चात्तापनिहता सती आत्मघातमेव शरणं मेने । एवं हि रागविरागाभ्यां सौजन्यदौर्जन्याभ्यां करुणाघृणाभ्यां जिजीविषामुमूर्षाभ्याञ्च युगपदेव संवलिता दिदिशा न सुखं जीवितुं शशाक न वा कथमप्यात्मानं निहन्तुम् ।

अस्मिन्नेव मानसे द्वन्द्वे साऽमृताङ्गतनयमसूत अनूषपतिनामानम् ।

व्यतीतप्रायाः कतिचन संवत्सराः । पञ्चविंशतिवर्षदेशीया राजमहिषी दिदिशा कन्दर्परङ्गस्थलीभूता सम्प्रति यौवनमध्याह्ने प्रविष्टाऽऽसीत् । पुत्रजन्मनाऽपि इदानीं सा शारदनिम्नगेव वीचिभ्रमावर्तविरहिता शान्तशान्ता समलक्ष्यत । मातृत्वमिदानीं प्राभवत् । संवादि जातं मनस्तस्याः स्थितिविपर्ययैः सार्धम् ।

एवमेव गच्छत्सु दिवसेषु कदाचिज् जराजर्जरितः पितृकल्पो नूतनपुरोहितः केनापि सुदर्शनेन यूना सह राजमहिषीसमीपमासाद्य जयजीवशब्दैस्तामभिनन्द्य सस्नेहमुदाजहार—देवि ! पुत्रकल्पोऽयं ब्राह्मणयुवकोऽस्मत्प्रार्थनया भूपालेन स्वसेवायां नियुक्तः । भवत्या अपि कृपापात्रतामयमवाप्नोत्वितिकृत्वा देवीपादमूलमेनमानीतवानस्मि । विनम्रः सद्गुणसम्पन्नः शौर्यपराक्रमसंवलितः सद्वृत्तश्चायम् । मन्ये स्वसेवयाऽत्रभवतीमपि प्रसादयिष्यत्ययम् ।

वृद्धपुरोहितवचनानन्तरमेव सुदर्शनो युवकः करकमलाञ्जलिमावध्य सविनयं सादरं च प्रणनाम सम्राज्ञीम् ।

—भद्र ! किन्नामाऽसि ? राजमहिषी पप्रच्छ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—भट्टिनि ! कर्णाङ्गारकनाम्ना ख्यातोऽस्मि, युवकः प्रोवाच ।

—शोभनम्, शौर्यपराक्रममण्डितः सत्यमेव कर्णाङ्गारकः प्रतिभासि । प्रसन्नास्मि राजप्रासादे तव नियुक्त्या ! राज्यकार्याणि निर्वहन् यथावसरमासाद्य मां ममापि निर्देशान् गृहाण । दिदिशाऽवदत् ।

—यथाऽऽज्ञापयति भट्टिनी । नतशिरा युवकोऽभाषत ।

अनन्तरमेव द्वावपि तौ गतौ । परन्तु तं सुदर्शनयुवकं दृष्ट्वैव दिदिशान्तरालेऽकाण्डताण्डवसन्निभः कश्चित्संकल्पचक्रवातः समुदतिष्ठत् ।

महद्भिः प्रयत्नैः यथाकथञ्चिद् विस्मृतं क्षतं पुनरपि प्रगाढपीडं जातम् । एवमभूद्राजमहिष्याश्चेतसि—'अपि नामाहं सबलात्कारममृताङ्गेन स्वायत्तीकृता न भवेयम् ! यदि मे तातचरणो जीवितः स्यात्, अद्याहमपि कर्णाङ्गारकसदृशस्य कस्यचित् सद्गुणमण्डितस्य ब्राह्मणयुवकस्य सहधर्मिणी भवेयम् । आः दैव ! निष्ठुरं त्वया कृतम् । मम रूपलावण्यमेव मद्भागधेयवैरि सञ्जातम् ! न मे मनसि शान्तिः, न मे काये शक्तिः, न मे हृदये निष्ठा ! वाञ्छन्त्या अपि न मेऽमृताङ्गं प्रत्यमर्षः शाम्यति । द्विधाभूतं जीवितम् ! किं करोमि ? स्वकृतकव्यवहारैः आत्मानं पतिपरायणां प्रदर्शयन्ती स्वभर्तारं राजपरिवारं संसारं वा छलयितुं प्रभवामि, परन्तु अन्तर्यामिनं परमेश्वरं कथं छलयितुं पारयेयम् ? सर्वज्ञोऽसौ प्रत्येकं हृदयस्पन्दनं सुष्ठु विजानाति ।

कर्णाङ्गारकः प्रायेण तृतीये चतुर्थे वाऽह्नि कुशलक्षेमनिर्देशावाप्त्यर्थं समायातिस्म । यत्किञ्चिदपि दिदिशा समादिशत् तदतिनिष्ठया सत्वरञ्चासौ सम्पादयामास । कस्मिंश्चिद्दिने राजमहिषी सस्नेहमवदत्—भद्र ! अलं मां भट्टिनीति सम्बोध्य ! न खलु त्वं भृत्यनिर्विशेषः, सद्वंशजातोऽसि, ब्राह्मणोऽसि ! त्वयोदात्तमहिम्ना भवितव्यम् ।

—भट्टिनि ! ब्राह्मणान् प्रति भूयसी भक्तिर्भवत्याः ? रहस्यमविजानन् कर्णाङ्गारकः झटित्येव प्रोवाच ।

—अथ किम् ! दिदिशाऽवोचत्, परन्तु पुनस्त्वया भट्टिनीति सम्बोधिताऽस्मि ! राज्ञी-देवीत्येवालम् ।

—क्षन्तव्योऽस्मि देवि ! चिरसंस्तुतमिदं सम्बोधनपदमप्रयुज्यमानत्वेऽपि समयमपेक्षते । सविनयमिति बभाण कर्णाङ्गारकः ।अतर्कितमेव स पुनरवोचत्—देवि ! अस्ति मे कापि पिपृच्छिषा । अपि नाम भवती मां तदर्थमनुमंस्यते ?

—स्वैरं पृच्छ, सहजभावेनैव दिदिशाऽवोचत् ।

—देवि ! राजमहिषीभूताऽपि किमिति नितरां विपन्नेव परिलक्ष्यसे ? न कदापि मया भवन्मुखाम्भोजे स्मितनीहारकणाः प्रत्यक्षीकृताः । राज-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महिष्यस्तु सान्द्रानन्दपयोधिपरिस्नाता नित्यस्मेराः श्रुता मया । ससम्भ्रमं मध्यपरिबाधाभयकातरः कर्णाङ्गारकः एकेनैव श्वासेन यथासमीहितं सर्वं पप्रच्छ ।

परन्तु तत्प्रश्नसमकालमेव राजमहिषी दिदिशा मुक्तकण्ठं रुरोद । प्रबलरुदितोच्छूने जपाकुसुमलोहिते नयने तस्या विलोक्य कर्णाङ्गारकः हतप्रभोऽजायत । निश्चप्रचं तेन नृशंसमनुष्ठितम् । परन्तु राजमहिषी कथमेवं परिदेवते ? कोऽस्या व्याधिः ? दैहिको वा मानसो वा ? अज्ञात्वा कथं वोपचारः करणीयः ? कर्णाङ्गारकोऽचिन्तयत्---देव्याः सेवकोऽस्मि । यदि मम प्राणोत्सर्गैरपि स्मितं देवीबिम्बाधरारूढं स्यात्तर्हि जीवनं मे सार्थकं भविष्यति ।

सहृदयानुमेयैव पुरोवर्तिनी कथा । अश्रुपातो नाम नारीपराजयप्रतीकध्वजः । रुदती नारी भिक्षुकी वा स्यात् राज्ञी वा स्यात् साक्षात्परमेश्वरी वा स्यात् सा दयनीयैव भवति । अश्रुभिस्तया: सर्वमपि रहस्यमुद्घाट्यते । सर्वमपि गौरवं लघूक्रियते । सर्वमपि व्यक्तित्वं शङ्कास्पदीक्रियते ।

दिदिशाऽपि नाम कर्णाङ्गारकसमक्षं नेत्रघनवर्षणं विधाय प्राकृता जाता । ततस्सा निखिलमपि आत्मवृत्तं दुर्धर्षमन्त्रप्रेरिता भुजगीव तस्मै विपत्तिबन्धुभूताय सहृदयनवयुवकाय शनैः शनैराचेदयत् । स्वकुतुकमाण्डतं शैशवं, स्वतातवात्सल्यं, अमृताङ्गस्य निष्ठुराचरणं, स्वसर्वविधपारवश्यं सर्वमपि साऽऽचचक्षे ।

दिदिशाव्यथां श्रुत्वा कर्णाङ्गारकः सन्तप्तायःपिण्डतामुपययौ । तस्यापि नेत्रद्वयं मिहिकावपातनिर्भरं प्रातरिन्दीवरयुगलमिव जातम् । उभावपि राजप्रासादस्य तस्मिन् विरलपरिजनप्रचारे प्रकोष्ठे स्थितौ चिरकालं यावत् परस्परं प्रत्यभिज्ञातुं प्रायतेताम् । सान्ध्यवेलां नेदीयसीमवलोक्य व्यथाभारमन्थरः कर्णाङ्गारको देवीं सान्त्वयित्वा प्रणम्य च राजमन्दिराद् बहिर्निश्चक्राम ।

सम्प्रति उभयोः जीवने काचिदभिनवा समञ्जसा चैतन्यधारा प्रावर्तत । जलं निजाधारतलं स्वयमेव मार्गयतीति यदुक्तं तत्सत्यमेव । उभयोः प्राणवल्लकी तुल्यनिर्वाणा, उभयोर्नयनयुगलं तुल्यस्वप्नसन्दर्शनं, किञ्चोभयोरपि हृदययुगलं तुल्यस्पन्दनं जातम् । दिदिशा स्वशैशवे यादृश प्राणप्रियसहचरं कल्पितवती कर्णाङ्गारकस्तादृश एवासीत् । दयितं प्रति प्रस्थिताः स्त्रियः सागराभिमुखा निम्नगा इव केन रोद्धुं शक्याः ? निभृतनिभृतं द्वयोरपि मिथोऽनुरागः परिणतोऽभूत् ।

कर्णाङ्गारकः शौर्यविक्रमसम्पन्नः सन् राजनयविज्ञानपटुरपि आसीत् । अमृताङ्गराजभवने निवसन्नेव सः स्वकीयैः सद्गुणैर्व्यवहारैः स्वभावैशिष्ट्यैश्च समेषां प्रियः सञ्जातः । सम्भ्रमिता राजसेवकास्तस्य प्रशंसकाः सुहृद्भूताश्चासन् । कम्बुग्रीवो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशालनेत्रो गौरवर्णो विततस्कन्धः पृथुलवक्षाश्चासौ स्वशरीरसम्पदाऽपि सर्वान् सद्य आकर्षतिस्म ।

साहसे श्रीः प्रतिवसति । राज्यलिप्सा कर्णाङ्गारकं नितरां विनिद्रं चकार । दिदिशाऽनुरक्तिरपि तं निरन्तरं साहसमनुष्ठातुं प्रेरयामास । तदेव घटितं यद्घटनीयमासीत् । अवसरमवाप्य कस्मिंश्चिद् दिने कर्णाङ्गारकोऽमृताङ्गं हतवान् आत्मानं च तुम्पेलराज्याधीश्वरमजूघुषत् । न क्वचिदपि विरोधस्वरोऽश्रूयत. यतो हि राजपुरोहितं प्रति तत्पापाचारेण सर्वेऽपि द्विजातयो वर्णाश्रमधर्मपरायणास्तस्मै नितरां द्रुह्यन्तिस्म । राजभवनसेवकास्तु कर्णाङ्गारकस्य गुणनिर्जितदासा एव आसन् । बहवस्तु दिदिशाप्रणयप्रसङ्गमपि जानन्तिस्म ।

एतत्सर्वस्य मूलमात्मानं मन्यमाना केवलं दिदिशैव स्वभर्त्रेऽमृताङ्गाय करुणकरुणं चुक्रोश । यद्यपि अमृताङ्गं प्रति तस्या निसर्गप्रीतिः कदापि पल्लविता नाभूत् । तथापि आत्मानं प्रति तस्य सहजासक्तिं सा सम्यक्तयानुभवतिस्म । धूमलेखेव नारी सर्वावस्थितिस्वीकृतिक्षमा ! यथा धूमलेखा घटे, कक्षे, विततांबरे वा तदाकाराकारिता सती सुखं तिष्ठति तथैव नारी नियतिप्रदत्तं सर्वमपि अवस्थाविपर्ययं स्वीकरोत्येव ।

यथावसरं कर्णाङ्गारकस्य राज्याभिषेकमहोत्सवः सम्पन्नोऽभूत् । इदानीं स राजसनाम्ना प्रतिष्ठितो बभूव तुम्पेलराज्यधुरि । राज्ञी दिदिशा तस्यापि प्राणवल्लभा पट्टमहिषी सञ्जाता । सर्वेऽपि द्विजातयो भूसुरोत्तमं शौर्यविक्रमालङ्कारभूतं सद्गुणकल्पवृक्षं राजसं तुम्पेलवसुधेश्वरं सम्प्राप्य प्रसादभावमुपययुः । राजपुरोहितप्राणोत्सर्गकर्तृकं समेषां दुःखं तदात्मजां दिदिशामिदानीं ब्राह्मणभूपालपरिणीतां दर्शं दर्शं विलिल्ये ।

कर्णाङ्गारको राजसः महान् प्रजानुरञ्जकोऽभूत् । स्वराजधानीं कुटराजनाम्नीमसौ 'सिंहसारिः' इत्यघोषयत् । नूतनैः राजप्रासादैः वलभीविटङ्कगोपुरप्राकारपरिखादिभिः मकरन्दोद्यानदेवालयालानमन्दुराक्रीडागृहान्तःपुरभवनैश्च तां सिंहसारिमसौ स्वप्राणेश्वरीं दिदिशामिव विभूषितवान् । कतिपयवर्षैरेव राजसख्यातिर्निखिलेऽपि यवद्वीपे द्रुतं प्रससार । पण्डिताः शास्त्रज्ञा गायका नर्तका दैवज्ञा अन्ये च विविधकलामर्मज्ञा राजसवैदुषीं कलाप्रियतां च श्रावं श्रावं सिंहसारिनगरीमाजग्मुः ।

पश्चिमे यवद्वीपे चापि दिवङ्गते सति शृङ्गे साम्प्रतं कृतजयो भूपतिरासीत् । परन्तु राजसप्रभावमसहमानोऽसौ नितरां स्वपरिभवं शङ्कतेस्म । तथाप्युभयोर्मध्ये किमपि प्रत्यक्षं वैमनस्यकारणं नोपस्थितमासीत् ।

दिनानि यातानि, दिनेभ्योऽप्यूर्ध्वं हायनानि क्षपितानि । पट्टमहिषी दिदिशा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वमतीतं विस्मृत्य महता सम्भारेण वर्तमानमेव रसास्वादपुरस्सरं जिजीव। तां प्रति कर्णाङ्गारकप्रेम प्रगाढात्प्रगाढतरं ततश्चापि प्रगाढतमं जातम्। क्षणमात्रमपि दिदिशाविरहितो राजसः सुखं न लेभे। दिदिशाललामलावण्यपारावारविहरणाभ्यस्तकेलिपाठीनभूतस्य राजसस्यान्तःपुरप्रविष्टस्य क्व साम्राज्यं क्व वाधिकारसौख्यं क्रीडाविनोदान्तरं वा ?

दाम्पत्यसाहचर्यवल्लरीयं फलवती जाता। दिदिशा क्रमेण चतुरस्तनयान् जनयामास येषाम् अतुलाङ्गो ज्येष्ठ आसीत्। पूर्वपत्युः अमृताङ्गादुत्पन्नः कुमारोऽनूषपतिः साम्प्रतं विंशतिवर्षदेशीय आसीत्। दिदिशा सर्वान् पुत्रान् महता वात्सल्येन समभावेन च पालयामास। अनूषपतिरपि कर्णाङ्गारकमेव स्वतातं मन्यमानस्तस्मिन्नतितरां स्निह्यतिस्म।

सर्वमासीत् सुव्यवस्थम्, परन्तु सुव्यवस्थां नियतिः कथं सहेत ? अकस्मादेव दिदिशाजीवनाकाशे भीष्मभीष्मं सुमहद् वात्याचक्रं समुत्थितम्, सर्वमपि येन विसंवादि जातम्। उन्मूलिता आशाप्ररोहाः, धूलिधूसरितानि स्वप्नकुसुमानि, सञ्चूर्णिता सौभाग्यत्रियामाव्रततिः, विरूपिताश्च मनोरथालवालाः। दिदिशासुखोपवनं विच्छिन्नं जातम्।

कर्णाङ्गारकः काञ्चिदपरां नवयौवनां सुन्दरीमुपयेमे। सम्प्रति कदाचिदेव दिदिशामन्दिरमसावाजगाम। कनीयसी भार्यैव सर्वस्वभूता। पत्युरनेन व्यवहारविपर्ययेण राजमहिषी भृशं सन्तप्ताभूत्। एवमभूत्तस्याश्चेतसि—हन्त ! हस्ताच्च्युतं सौभाग्यम्। अयं खलु मे द्वितीयः पराजयः। किं पश्यन्ति पुरुषाः प्रमदासु ? रूपमात्रं सौन्दर्यमात्रं यौवनमात्रम् अङ्गसौष्ठवमात्रम् ? कस्मात्खल्विदम् ? किं रमण्यां सौन्दर्यादृते नान्यत्किमपि अवशिष्यते समादरयोग्यम् ? याऽहं कर्णाङ्गारककृते मेनकोर्वशीतिलोत्तमाभूता सैवाहं कथमिदानीं तत्तुष्ट्यै नालम् ? अमृताङ्गोऽपि मयि रूपलावण्यमात्रं ददर्श। हन्त राजसोऽपि मयि तन्मात्रमेव निभालयते। तर्हि को विशेष उभयोः ? निश्चप्रचं द्वावपि रूपसौन्दर्यकीटौ। दिदिशासद्गुणान् दिदिशानिष्ठां न कोऽपि दिदृक्षति !

प्रायेण सा निभृतनिभृतमेकान्ते रुरोद। कस्मै निवेदयेत स्वमनोरुजम् ? दिदिशा सर्वमपि स्वीचकार स्वादुष्टमद्युपकं मन्यमाना। नवागता राजमहिष्यपि क्रमेण पुत्रचतुष्टयं जनयामास।

कस्मिंश्चिद् दिने सौगतभिक्षूणां विशालसंघः कश्चित् कडिरीनगरादागत्य राजसं कर्णाङ्गारकमाससाद। ते सर्वे यवद्वीपे क्रियमाणान् कडिरीनरेशस्य कृतजयस्य अत्याचारान् बौद्धधर्मतिरस्कारांश्च सविषादं वर्णयामासुः। प्रार्थितवन्तश्च ते कृतजयविनाशार्थम्। बौद्धमतावलम्बिनः सर्वेऽपि श्रमणा भिक्षवो गृहस्था उपासकाश्च राजसपक्षे स्थास्यन्तीत्यपि ते प्रतिज्ञातवन्तः। एतत्सर्वं निशम्य राजसः स्वमनोरथपूर्त्यर्थं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुवर्णावसरं ददर्श । सौगतश्रमणान् सत्कृत्य परितोष्य च विससर्ज । स्वाक्रमणतिथिमपि सङ्केतितवान् ।

महता सैन्यबलेन राजसोऽकस्मादेव कडिरीनगरमरुणत् । कडिरीनरेन्द्रः कृतजयाभिधानः परमविद्वान् परमशैवः सौगतमतोपेक्षी सहसैव स्वसामन्तभूतेन विश्वासपात्रेण राजसेन समाक्रान्तः सन् किंकर्तव्यमूढो जातः । पराजिता तस्य सेना । आत्मरक्षणाय राजधानीतः प्रद्रुतो भूपतिरपि मध्येमार्गं निष्करुणं निहतः कर्णाङ्गारकेण राजसेन ।

तस्मिन्नेव महासमरेऽकुण्ठविजयश्रियमालिङ्ग्य राजसः कर्णाङ्गारकः सान्ध्यवेलायां स्वराजधानीं सिंहसारिमागतवान् । विजयसमाचारस्तु दूतमुखैस्तदागमनात् प्रागेव पौरेभ्यः प्रदत्त आसीत् । अतएव सर्वत्रापि राजसाभिनन्दनमहोत्सवपरम्परा प्रावर्तत । परन्तु विजयी भूपतिः पट्टमहिषीसौधमुपेक्ष्य कनीयस्या महिष्या मन्दिरे प्रविष्ट इति सूचितवती दिदिशापरिचारिका । शय्योपरि पतिता वेदनार्ता दिदिशा निर्जला शफरीव वेल्लमानाऽल्पेनैव कालेन सर्वमपि व्यतीतवृत्तं सस्मार । भुजगूहितमुपधानं नयनसलिलक्लिन्नं जातम् ।

सम्प्रति कर्णाङ्गारको राजसः सकलयवद्वीपेश्वर आसीत् । यवद्वीपाधिराज्ये कडिरीवंशप्रभुत्वं विनष्टमिदानीम् ! सिंहसारिवंशप्रभुत्वं स्थापितं, यस्यासीत् प्रतिष्ठापको गिरीन्द्रपुत्रापरनामा प्रतापैश्वर्यनिधानभूतः कर्णाङ्गारको राजसः । परन्तु वराकी दिदिशा नाम्नैव पट्टमहिषीदानीमासीत् । क्षीयमाणमरन्दकोशेव कमलिनी नासावाकर्षितवती सम्प्रति यौवनमधुलम्पटं स्वप्राणवल्लभम् ।

एवमेव समयो व्यतीतप्रायः । सर्वेऽपि नवकुमारा राजभवनं स्ववालक्रीडाभिरलञ्चक्रुः । अनूषपतिर्ज्येष्ठोऽमृताङ्गपुत्रस्तु पञ्चविंशतिवर्षदेशीयः परमशान्तो धीरस्वभावश्चासीत् । स कदाचित् अविरलाश्रुपूरितनयनो मातरमुपागतः । दिदिशा तं तादृशं दृष्टवा कातरीभूता पप्रच्छ च सस्नेहं व्यथाकारणं ।

—अम्ब ! तातो न मयि स्निह्यति । कथम् ? किमहं न तस्य पुत्रः ? सोदरसमक्षमेव मां तिरस्कुरुते । किम्मयाऽपराद्धम् ? को नु खलु मय्यवगुणः ? ब्रूहि अम्ब ! कस्मादसौ मय्यकरुणः ? कुमारः पप्रच्छ.....

साश्रुमुखी दिदिशा सर्वमिदं श्रुत्वा हतप्रभा जाता, किं वदेत् ?

—कथं तूष्णीमास्थिताऽस्मि मातः ? कथमनुक्त्वैव रोदिषि ? शापिताऽसि मत्प्राणैः अनिगूह्य किञ्चिदपि सत्यं वद । कुमारोऽवदत् ।

अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते ! आत्मदुःखं किञ्चिद्, वल्लभकृतावमाननं किञ्चित्, सपत्नीसौभाग्यासहिष्णुत्वं किञ्चित्, कुमारस्यानूषपतेरवसादनं किञ्चित् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वाण्यपि सहसा पुञ्जीभूतानि। कोमलहृदया वराकी दिदिशा रहस्यं रक्षितुं न शशाक। सर्वमपि पूर्वपतिविषयकं वृत्तं प्रकटितवती। उभावपि परस्परं कण्ठलग्नौ चिरकालं यावत् परिदेवमानावास्ताम्।

तस्मिन्नेव रात्रौ पङ्कलसनाभिधः कश्चिद्राजपुरुषो भोजनाय समुपस्थितं यवद्वीपेश्वरं कर्णाङ्गारकं राजसं निशितखड्गेन घातितवान्। कुमारोऽनूषपतिस्तं पितृघातिनं तत्कालमेव हतवान् प्रादर्शयच्च स्वपितृनिष्ठाम्। परन्तु को नु खलु परमार्थतो राजसवधिक इति रहस्यं केवलं राजमहिषी दिदिशैव बुबुधे। द्वितीयं वैधव्यमिदं राजधान्याः सिंहसारेः पट्टमहिष्या दिदिशायाश्चासीत्।[1]

---

१. कथाविषयकम् ऐतिह्यम्।

महाकविप्रपञ्चविरचिते नागरकृतागमे पररतोनाम्नि यवद्वीपेतिहासग्रन्थे च वृत्तमिदं प्राप्यते। ख्रिस्तीये द्वादशशतके पूर्वयवद्वीपे तुम्पेलनाम्नि राज्ये 'तुङ्गुल-अमेतुङ्गः प्रशास्तिस्म। स हीनवंशीयः काञ्चित् ब्राह्मणपुत्रीं डेडेस-नाम्नीं परिणिनाय सबलात्कारम्। अनूपपतिस्तयोरेव पुत्र आसीत्।

'केनअंग्रोकः' कस्यचित् ब्राह्मणकृषकस्य पुत्र आसीत्। निसर्गविक्रमः दर्शनीयाकृतिरसौ दुर्व्यसनासक्तः युवकः कदाचित् राजपुरोहितेन दृष्टः परिचयमवाप्य च तेन पुत्रीकृत्य राजभवनं नीतः। अमेतुङ्गः राजपुरोहितसमादरवशात् तत्पुत्रं केन अंग्रोकं स्वसेवायां नियुयोज।

राजभवने निवसन्नेव केन अंग्रोकः परमसुन्दरीं राजमहिषीं कदाचिद् ददर्श। तद्विषयकं सर्वमपि वृत्तं, राजनि तस्या द्वेषभावमरुचिञ्च विज्ञाय स प्रवञ्चनेन स्वामिनं घातितवान्। पश्चाच्चात्मानं तुम्पेलाधिपतिमुद्घोष्य विधवां राजमहिषीं परिणीतवान्। १२२२ मिते ख्रिस्ताब्देऽसौ कडिरीनरेशं कृतजयं युद्धे निजघान निखिलयवद्वीपाधीश्वरश्च सञ्जातः। १२४७ तमे ख्रिस्ताब्दे ज्ञातरहस्यकेन अनूषपतिना स्वयमपि च घातितः। सिंहसारिनगरस्य दक्षिणभागे तस्य समाधिमन्दिरमद्यापि द्रष्टुं शक्यते। राज्ञी डेडेसाख्याऽपि प्रज्ञापारमिताख्येण स्थापिता। तस्याः कांस्यमूर्तिरिदानीमपि लीडेनविश्वविद्यालयसंग्रहालये (हालैण्डदेशे) सुरक्षिता वर्तते।

एवं हि जावाद्वीपेतिहासे केनअंग्रोकः सिंहसारिसाम्राज्यस्य प्रतिष्ठापकः वर्तते। प्रस्तुतकथायां मया अमेतुंग-केनअंग्रोक-डेडेसनामानि अमृताङ्गकर्णाङ्गारक-दिदिशा-रूपेण स्वीकृतानि। राजपुरोहितसुता दिदिशेत्यपि ममैवोत्प्रेक्षितम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राङ्गडा

बालीद्वीपप्रवासे दैनन्दिनीलेखनं मदीयं प्रियकार्यम् । आदिवसानुभूतचिन्तित-प्रत्यक्षीकृतविचारोपायस्थानानां सङ्कलनमधित्रियामं यत्नात्करोमि । प्रवाससाक्षिका एते निबन्धा भारतीयबन्धून् समुपकुर्युरितिकृत्वैवायं प्रयासोऽन्यथा कान्तारे नर्त्तितो मयूरः केन दृष्टः ?

अद्यामरावतीतीर्थस्य यात्रा कृता । बालीद्वीपस्य ग्यान्यारप्रमण्डले पकरिसान-पेतानूनद्योर्मध्यभागोऽमरावतीक्षेत्रत्वेन निरूपितः । अस्मिन्नवकाशे गोवागजा-(गजगुहा) गुनुंगकवि-(कविपर्वत) तीर्तएम्पुल-(तीर्थामृत) पुरापुसरिङ्जगत्-(जगत्केन्द्रमन्दिर) प्रभृतीनि पवित्रतीर्थस्थलानि वर्तन्ते ।

अमरावतीक्षेत्रस्य प्रवेशद्वार एव डेनपसार-ग्यान्यारराजमार्गस्य दक्षिणांशे कुतरीग्रामे दूरतः एव समालक्ष्यते लघुपर्वतोपरि दुर्गामहिषमर्दिनीमन्दिरम् । परन्तु बालीग्रामग्रामटिकासु राङ्गडामन्दिरमित्येव प्रत्यभिज्ञानमवाप्यते पुराणदेवालयस्यास्य । राङ्गडा नाम प्रेताधीश्वरी या खलु राङ्गडात्वोपपत्तेः प्राक् बालीनरपतेर्महाभागवतस्य धर्मोदयनवर्मणो गुणप्रियधर्मपत्नी, यवद्वीपेश्वरस्य मकुटवंशवर्धनस्य च कनीयसी दुहिताऽऽसीत् ।

कुतरीग्रामे घण्टापथमपहाय प्राङ्मुखं किञ्चिद्दूरमटित्वाऽक्षिलक्ष्यीकृत मन्दिर-परिसरस्य गोपुरं भीमामुखाकृतिमण्डितम् । ततश्चान्तः प्रविश्य प्रायेण शतत्रयमित-सोपानफलकान्यधिरुह्य समासाद्य च भग्नगिरिशिखरं नयनपाथेयीकृतं भगवत्या महिष-मर्दिन्यास्तन्मन्दिरं यस्मिन् खलु निभृतं विश्राम्यति कात्यायनी सहस्रहायनेभ्यः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिग्व्याप्तविततपीनशाखो विविधवर्णस्वरोत्पतनपद्धतिविहगकुलमण्डितः स्तम्भीभवदनेकविलम्बिविटपप्ररोहः गाढोपगूढबृहच्छिलाशकलसन्ततिः पुराणबिरिंगिनवृक्षो न्यग्रोधजातीयः पर्वतशिखरं तत् संस्खलितप्रायमावेष्ट्य शिफाङ्कपाल्या दुर्ललितदारकमिव लालयन् स्थित आसीत् ।

वारुणदिङ्मुखीं भगवतीं पराम्बां दृष्ट्वैव नेत्रेऽश्रुसंवलिते जाते । आसीच्च मे मनसि—हा मातः ! केयं ते दुःस्थितिः ? या त्वं भारते विन्ध्यकामाख्यामैहरार्बुदाचलशिखरेषु काञ्चीमदुरामहावतीप्रभृतिसुरालयेषु महता सम्भारेण त्रिसन्ध्यं समर्च्यसे प्रणतभक्तवृन्दैः सा त्वमत्र बालीद्वीपीये कुतरीग्रामे राङ्गडाभूता श्मसानभूमौ पशुपतिविरहिता कथमेकाकिनी तिष्ठसि ? राजराजेश्वरि ! भ्रूभङ्गमात्रेणैव त्रिलोकं विदधती विनाशयन्ती च या त्वं हरिहरविरञ्चिसेव्यमाना सर्वोपरि राराज्यसे सैवेदानीं कथं दैन्यमिदमनुभवसि ? क्या टङ्किकया निर्मितस्ते विग्रहः ? काभ्यां हस्ताभ्यामत्र शून्यविपिने स्थापिताऽसि ? निखिलब्रह्माण्डसुखसौभाग्यनिस्यन्दभूताऽखण्डसौन्दर्यलावण्यपूरपरिवारिताऽपि जननि ! केन दुर्बुद्धिना राङ्गडेति परिकल्पिताऽसि ?

एवं चिन्तयत्येव मयि व्यतीताः कतिपयनिमेषाः । यथा भ्रमन् रौति भ्रमरः पुष्पमरन्दमाधुरीलम्पटस्तथैव विचारवीथीमाहिण्डमानस्यैव मम कण्ठः सौन्दर्यलहरीशिखरिणीभिः सहसैव करम्बित आसीत् । स्तवं यावत्स्मृतं परिसमाप्य सादरं सप्रणिपातं च प्रणामाञ्जलिं विनिवेद्य मया सकृत्पुनरवलोकितो जननीविग्रहः । प्रस्तरदोषवशादङ्गानि क्वचिद्भग्नप्रायाण्यासन् । परन्तु शीर्षभागः सर्वथाऽक्षत आसीत् । मन्दस्मेरविराजितं मुखं, कारुण्यप्रकटयितृ सौम्यनयनयुगलं, विलम्बिताटङ्ककुवेलाङ्कितं श्रवणयुग्मं सर्वमपि पाषाणमयं सदपि चिन्मयमलक्ष्यत । अधोऽधश्चरणद्वयमुत्कीर्णा महिषाकृतिरपि चैतन्यप्रत्ययमुत्पादयामास ।

परन्तु मनो मे यायावरस्वभावं कदा मन्दिरप्राङ्गणस्य स्थूलशरीरान्निष्क्रम्य यवद्वीपेतिहासग्रन्थपर्णानि उद्घाटयितुं प्रवृत्तमित्यहमपि नानुभूतवान् !

(१)

खिस्तीया दशमशताब्दी ! ईशानविक्रमधर्मोत्तुङ्गदेवः शिण्डोकापरनामा मतरामवंशीयो भूपतिः प्राच्ययवद्वीपं निर्विघ्नं प्रशशास। तन्नन्दिनी ईशानतुङ्गविजया लोकपालनृपतिमुपयम्य मकुटवंशवर्धनं साम्राज्योत्तराधिकारिणं तनयं जनयामास । तस्यापि भूपतेः द्वे कन्ये आस्ताम् । ज्येष्ठां कन्यां धर्मवंशाख्येन भूपालेन सह परिणीय यवनरेशं तं विदधे मकुटवंशवर्धनः । कनिष्ठां यवराजलक्ष्मीति प्रख्यातां, गुणप्रियधर्मपत्नीति शिलालेखोत्कीर्णविशिष्टसंज्ञां राजपुत्रीं महेन्द्रदत्तां बालीद्वीपेश्वराय धर्मोदयनवर्मणे समर्प्य यवसाम्राज्याङ्गभूतं बालीद्वीपञ्च तस्मै यौतकीकृत्य परां तुष्टिमगाद्यवभूपतिः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्प्रति यवराजकन्या बालीद्वीपाधीश्वरी जाता। तामनिन्द्यसौन्दर्यसम्पन्नां यवराजलक्ष्मीमवाप्य न सस्मार दिवसत्रियामान्तरं तन्मुखचन्द्रलालाटिकचकोरभूतो धर्मोदयनदेवः। नाम्नाऽपि प्रशासति तस्मिन् महाविक्रमशालिनि भूभुजि असत्यं नर्मवाक्येषु वा स्त्रीषु वा, भयं राजदण्डेषु वाऽधर्माचरणेषु वा, आसक्तिः पुत्रकलत्रादिषु वा देवतासु वा, रतिः स्वप्रमदासु वा परोपकरणेषु वा, पराक्रमः कर्त्तव्यनिर्वहणेषु वा समराङ्गणेषु वा परिनिष्ठित आसीत्। गृहे-गृहे उदयनमहेन्द्रदत्तयोश्चर्चा प्रसृता। उभयोः प्रेम, उभयोः सख्यं सौहार्दमुभयोराहोपुरुषिकोभयोः मनसिजरत्यवतारभूतत्वमिति सर्वमपि व्याप्तमासीत् वातरथासीनं सद्बालीद्वीपनदीनदगिरिनिर्झरोपत्यकाधित्यकाग्रामग्रामटिकापुरचैत्यविहारादिषु।

यवद्वीपेश्वरो धर्मवंशः स्वराजगुरुं कुतुरानसंज्ञं राजनन्दिन्या सार्धमेव बालीद्वीपं प्रेषितवान् महामात्यपददायित्वनिर्वहणार्थम्। वेदशास्त्रपुराणमर्मज्ञो राजनयपटुरसौ भारतवर्षे सुमन्त्रो दशरथमिव, विदुरो युधिष्ठिरमिव, यौगन्धरायणो वत्सराजमिव, हरिषेणश्चन्द्रगुप्तमिव विद्यारण्यो माधवो हरिहरबुक्काविव बालीनरेशमुदयनदेवं स्वप्रतिभया राजनयेन च सम्यग् रक्षितवान्।

दाम्पत्यतरुरुदयनमहेन्द्रदत्तयोर्यथावसरं फलवत्तामुपययौ। समुत्पन्नः कुमार एरलङ्गो महाप्रभाववान् चक्रवर्तिलक्षणोपेतः। बालीद्वीपे महान् प्रमोदभरः प्रजावर्गे समजनि। गृहे-गृहे ग्रामे-ग्रामे गीतानि गीतानि, क्रीडितानि क्रीडितानि, उपहारा, श्चोपहृता भूभुजे प्रजाजनैः।

कुमार एरलङ्गे पृथिवीमवतरत्येव यवद्वीपसाम्राज्यं निखिलद्वीपमण्डलनायकतामुपययौ। सुमात्राद्वीपयं महाशक्तिमत् श्रीविजयसाम्राज्यमपि यवद्वीपेश्वरेण धर्मवंशेन प्रसह्य समाक्रम्य ९९० मितखिस्ताब्दे स्ववशीकृतम्।

षोडशवर्षीय एव कन्दर्पप्रतियातनाभूतः कुमार एरलङ्गः स्वमातृष्वसेयीं धर्मवंशनन्दिनीं परिणीय बालमार्तण्ड इवोदयाचलमधिरुरोह। सम्प्रत्यसौ धर्मवंशजामातृत्वात् यवद्वीपीस्य उदयनपुत्रत्वाच्च बालीद्वीपस्य भाविप्रशासकः सञ्जातः। योगक्षेमसमन्वितं यवसाम्राज्यं सम्प्रति सर्वतोमुखं हर्षनिर्भरं समजायत।

एवमेव व्यतीतप्राये समये समुपरूढा खिस्तीया एकादशशताब्दी। ज्ञानविज्ञानकलास्थापत्योन्नयनकालोऽयमासीत्। म्पूयोगीश्वरः शिण्डोकसंरक्षण एव बृहत्तमं रमणीयतमञ्च षड्विंशतिसर्गात्मकं रामायणककवीनाख्यं महाकाव्यं लिलेख। सम्भरसूर्यविरणोऽपि सुभूतिन्त्रं संगह्यंगकमहायानिकन्-संज्ञञ्च सौगततंत्रपरं ग्रन्थद्वयं प्रणीतवान्। इदानीमपि विद्याकलास्थापत्यपक्षधरे धर्मवंशे प्रशासति महाभारतस्य बहूनि पर्वाणि प्राचीनजावीभाषायामनूदितानि। शिवशासनाख्या धर्मव्याख्यापरा कृतिश्चापि प्रणीय प्रचारप्रसारतामुपनीता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु सर्वाणि दिनानि समञ्जसान्येव नातियान्ति। शान्तेऽप्युपवने वात्येव वात्या। शान्तेऽपि जलधौ समुत्तिष्ठत्येव जलोत्प्लवः। शान्तेऽपि भूतले समुज्जृम्भत एव भूकम्पः। यवद्वीपे चापि सौराज्यसौमनस्यनिर्भरेऽकस्मादेव ददृशे महाभैरवः स्थितिविपर्ययः।

प्रसह्य खलीकृतः श्रीविजयसाम्राज्याधिपतिः संग्रामविजयतुङ्गवर्मा निभृत-निभृतं शक्तिसञ्चयं कृत्वा गुप्तचरमुखेभ्यो यवद्वीपशैथिल्यवृत्तमवगम्य कालमेघगत्या-ऽकस्मादेव धर्मवंशराजधानीमरुणत्। जिघांसुशाकुनिकैर्झटिति पाशबद्धः प्रसुप्तकण्ठीरव इव सर्वविधसमर्थोऽपि मतरामवंशीयो यवाधिपतिः किञ्चिदपि कर्तुं न शशाक। स खलु यथाकथञ्चिद्राजधानीतः सकुटुम्बं प्रपलाय्य प्राणरक्षां कृतवान्। शैलेन्द्रवंशीयः सुमात्राद्वीपेश्वरोऽपि राजधानीं भस्मसात्कृत्य स्वपूर्वपराजयं निर्यातितवान्।[1] १००६ मितखिस्ताब्दे वृत्तमिदं घटितम्। ततश्चागामिन्येव संवत्सरे पराजय-विषण्णहृदयो धर्मवंशो जीवनं निरर्थकं मन्यमानो दिवङ्गतः।

औदीच्ययवद्वीपे स्थापिताः सम्प्रति शैलेन्द्राः। कुमार एरलङ्गोऽपि उपराग-ग्रस्तो भास्कर इव विश्वस्तसामन्तजनपरिवृतो यवद्वीपप्रजानुरागरञ्जितमनाः स्वानु-कूलमवसरं प्रतीक्षमाणो दक्षिणयवद्वीपे गुप्तरीत्या दिवसान् अनैषीत्। स नक्तन्दिवं कोशबलसञ्चये प्रयत्नपर आसीत्। यवद्वीपप्रजाऽपि श्रीविजयाधिकारं कलङ्कमिव मन्यमाना मतरामभाग्योदयं नितरामकामयत।

तावदेव समागतोऽसौ सुवर्णावसरः। १०१० मिते खिस्ताब्दे सर्वेऽपि यव-द्वीपीयाः पण्डिता विद्वांसः सामन्ताः प्रजामुख्याश्च पुञ्जीभूय कुमारमेरलङ्गमुपययुः। यवद्वीपमनाथमसहायञ्च स्वविक्रमेण संरक्षितुं, मतरामसाम्राज्यवंशगौरवञ्च पुनरुन्नेतुं ते प्रार्थितवन्तः[2]। प्रजाजनाभ्यर्थित एरलङ्गो महतोत्साहेन राज्यभारं स्वीचकार। एवं हि यवद्वीपमिदानीं द्विधा विभक्तं शैलेन्द्रमतरामसाम्राज्ययोः। शैलेन्द्रा यतो हि द्वीपान्तरवासिनोऽतश्च यवद्वीपमधिकुर्वाणा अपि ते नितरां शङ्किता एव आसन्।

१०१९ मितखिस्ताब्दे एरलङ्गस्य राज्याभिषेकमहोत्सवः सम्पन्नः। इदानीं स आसीद् रकेहलुश्रीलोकेश्वरधर्मवंशएरलङ्गअनन्तविक्रमोत्तुङ्गदेवः। तस्य राज्यं सुरावायासागरतटाद् दक्षिणस्यां दिशि पसुरुहनजनपदं यावत् परिव्याप्तमासीत्।

---

१. अथ भस्मसादगमदाशु तत्पुरं
पुरुहूतराष्ट्रमिव चोद्यतं चिरम्। —एरलंगप्रशस्तिः (कलकत्तासंग्रहालयस्था)

२. शाके द्वन्द्वविलोचनाग्निवदने याते महावत्सरे
माघे मासि सितत्रयोदशतिथौ वारे शशिन्युत्सुकैः।
आगत्य प्रणतैर्जनैर्द्विजवरैस्साश्वासमभ्यर्थितः
श्रीलोकेश्वरनीरलंघनृपतिः पाहीत्युदन्तात् क्षितिम्॥ —एरलंगप्रशस्तिः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं गतवत्स्वेव दिवसेषु दक्षिणभारतीयश्चोलावनीन्द्रो राजराजनन्दनो राजेन्द्रचोलः श्रीविजयसाम्राज्यमुच्छेत्तुमुपाययौ। १०२५ मितखिस्ताब्दे तत्रस्थः शैलेन्द्रशासकः संग्रामविजयतुङ्गवर्मा चोलराजेन प्रसह्य सञ्चूर्णितः। तस्य दयिता संग्रामविजयधर्मप्रसादोत्तुङ्गदेवीनाम्नी सुमात्राद्वीपात्प्रपलाय्य यवद्वीपमागतवती पश्चाच्च एरलङ्गमुपयम्य तस्य राजमहिषी सञ्जाता। घटनयाऽनया श्रीविजयमतरामसाम्राज्ययोर्मध्ये मैत्री संस्थापिताऽभूत्। उत्तरयवद्वीपोपर्यपि शैलेन्द्राधिकारः परिसमाप्तः।

राहुमुक्तः शर्वरीश इव साम्प्रतमेरलंगो भृशं प्रचकाशे। दिग्विजयाय तं प्रस्थितमात्रमाकर्ण्य प्रायेण सर्वे सामन्ताः कन्योपायनविनयप्रदर्शनादिभिरुपायैस्तत्सार्वभौमत्वमङ्गीचक्रुः। कुटिलाश्चावशिष्टा यथायथं दण्डिताः। १०२९ मितवत्सरे भीष्मप्रभावो बुरतने सञ्चूर्णितः। १०३० मितवत्सरे वेङ्केरनगरे कुमारविजयशक्तिर्विनष्टा। १०३१ मितवत्सरे अधमानुपदं खलीकृत्य तस्य राजधानी समूलं दग्धा। १०३२ मितवत्सरे दक्षिणयवद्वीपस्य शक्तिमदगर्वितोग्रवीर्या काचित्साम्राज्ञी परमाविनयवती पराजिता यवद्वीपभूपेन।

दिग्विजयस्थापितसौराज्यो यवद्वीपमखिलं निष्कण्टकमिदानीं प्रशासदेरलंगः सौभाग्यैश्वर्यप्रतापपराकाष्ठामधिरूढः। कडुरिपनाख्ये नगरे स्वराजधानीं निवेश्य सकलसामन्तचक्रचूडामणिरेरलगः प्रजोपकारनिरतो महद्यश आततान। एरलंगे प्रशासति यवद्वीपे विद्याधर्मकलासंस्कृतिप्रभृतीनां महती समुन्नतिर्जाता। देशान्तराण्यपि करम्बितवती एरलंगपदगुणप्रशस्तिः। आर्यविलग–(कलिङ्ग) गोल–(गौड) सिंघल-कर्णाटचोलिक–(चोल) मलयल (केरल) पण्डिकिर–(पाण्ड्य) द्रविडादिकाः सर्वेऽपि एरलङ्गगुणनिर्जिताः आसन्। विबधेषु शिलालेखेषु प्रमाणितं दृश्यते वृत्तमिदम्।

प्रजाजना विद्वांसश्च राजराजेश्वरमेरलङ्गं नारायणावतारभूतं मेनिरे। राजमुद्रासु तस्य लक्ष्मीद्वयमध्यस्थो गरुडवाही विष्णुरङ्कितो येन हि साम्राज्ञीद्वयमण्डितः सम्राट् एरलङ्गः सर्वथा स्फारीभूतः।

(२)

बालीनरेश उदयनोऽपि महामात्यराजगुरुमहिम्नः कुतुरानस्य हस्तयोर्द्वीपप्रजानुपालनभरं निधाय साम्राज्ञीं महेन्द्रदत्तां देवाङ्गनोपमरूपलावण्यवतीं समाराधयन् महत् पार्थिवसौख्यं भेजे। यद्यपि यवसाम्राज्यपतनोत्थानव्यतिकरैरप्रभावितमेवासीद् बालीद्वीपं तथापि पुत्रस्नेहकातरहृदयो नरपतिरेरलङ्गं प्रति सर्वदैव चिन्तापरो बभूव।

अथ गच्छति काले सम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता एरलंगानन्तरं पुत्रद्वयं क्रमेण सुषुवे मरकतम् आनकवंसुञ्च।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कदाचिद् धर्मोदयनवर्मदेवः प्रयोजनवशात्कतिपयसामन्तपरिवृतो ग्रामग्रामटिकाः पश्यन् प्रजाजनयोगक्षेमवृत्तं च पृच्छन् बभ्राम, परन्तु न कुत्रापि भूपतिः हर्षामोद-सम्भारं ददर्श। सर्वत्रापि हाहाकारः। ग्लानिदैन्यविषादरेखाङ्कितानि प्रजाजनमुख-मण्डलानि। शून्या देवालयाः। शून्याः ग्रामाः। मृत्युविभीषिकेव सर्वत्र तामसी व्यथा प्राभवत्! पथि-पथि कुब्जाः खञ्जाः काणाश्च समवलोकिताः।

एतत्सर्वं निभाल्य भूपतिः परां पीडामुपजगाम। आसीच्च तस्य मनसि—हा दैव! अन्तःपुरप्रकोष्ठनिरुद्धः कन्दर्पकेलिव्यापृतचित्तवृत्तिरहं न कदापि प्रजावर्गान् अपश्यम्। धर्मन्याससच्चारित्र्यावतारभूते कुतुराने महामात्यपदमधिरूढे मयि चाप्यु-दयनेऽकुण्ठविक्रमे प्रशासति कुतोऽयं गात्रोपघातः प्रजानाम्? कस्मादिदं दैन्यं निदा-घदाहदग्धविलासवनप्रसूननिवहकल्पम्? हन्त! चन्द्रोदयेऽपि सङ्कुचन्ति कुमुदानि? वर्षत्यपि बलाहके प्रज्वलन्ति भूधराः? सूर्योदये सत्यपि प्रभवति तमस्काण्डम्?

ततश्चैकस्मिन् ग्रामेऽश्ववल्गां नियम्य पल्यङ्कादवततार नरपतिः। चिरकाला-देव परिणतभूपालदिदृक्षा आबालवृद्धाः प्रजाजनाः प्रजेश्वरं पुरः स्थितं दृष्ट्वा क्षणेनैव पुञ्जीभूताः। कोऽपि मसृणं नारिकेलफलं, कोऽपि मोचास्तबकं, कोऽपि स्वकरनिर्मित-पट्टांशुकं, कोऽपि गृहनिर्मितं कुशास्तरणं समुपायनीचकार द्वितीयतिथीन्दुभूताय भूपतये। ईषदुन्मीलितावगुण्ठा गृहवध्वो राजानं कुसुमवर्षाभिरभिननन्दुः।

अथ मध्य एव पप्रच्छ राजा कामपि ग्रामवृद्धाम्—मातः! कस्मादहं सर्वत्रापि दैन्यं भयं विषादञ्च पश्यामि? किं तस्कराः प्रभवन्ति? किं लुण्ठाका दस्यवो वा बाधन्ते आहोस्वित् किमप्यन्यत् दैहिकं दैविकं वा भयं मत्प्रजावर्गं शातयति? प्रमूत-कालानन्तरमागतोऽस्मि। प्रायेण प्रणिधिसामन्तपुरोहितवचनेषु विश्वस्य सर्वमेव समञ्जसं मत्वा न मयाऽवेक्षिताः प्रजाजनाः प्रत्यक्षम्। तन्न युक्तमासीदिति सम्प्रत्य-नुभवामि। आत्मानं महान्तमपराधिनं मन्ये।

प्रजेश्वरस्य प्रजानुरागं विलोक्य तत्पश्चात्तापं चानुभूय ग्रामवृद्धा सा मुक्त-कण्ठं रुरोद। सर्वेऽपि ग्रामीणाः संस्मृतात्मव्यथाः करुणं रुरुदुः। उदयनदेवो हतप्रभो वैलक्ष्यमज्जितः स्वापराधानुभूतिकातरश्चाजायत।

ततश्चाश्रुदुर्वारवेगं यथाकथञ्चिन्नियम्य प्रोवाच वृद्धा—प्रजानाथ! भास्क-रोपमे प्रतपत्यपि भवति क्व सुखं कुवेलानाम्? खद्योता एव परमसुखिनः। प्रभो! निखिलमपि बालीद्वीपमिदानीं तन्त्राभिचारव्यभिचाररक्तपातप्रयोगस्थलीभूतम्। कापालिका नृशंसकर्माण एव प्रभवन्ति, सात्त्विकसमर्चननिरतान् जनान् ते निष्ठुरं शातयन्ति। तस्मान्निरुद्धा एव नारायणमन्दिरकपाटाः। भयभीता जना न कदापि कथमपि गच्छन्ति तीर्थस्थलेषु। ये पुनः कापालिकान् अतिशेरते ते तन्त्रप्रयोगैर्मृतकल्पा विधीयन्ते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—पश्यन्तु आर्यपादा मदीयं मेरुदण्डम् ! प्रागेवंविधो नासम् । नारायण-भक्तेरिदं दुष्फलं यज्जीवन्नपि मृतोऽस्मि । धनुष्टङ्कारव्याधिपरिपीडनं नक्तन्दिवमनुभवामि —इत्यवोचत् कश्चित् कुब्जः पुरस्सरीभूय ।

—हा भूपते ! विद्याविनयगुणपराक्रमनिधे ! भवति वर्तमानेऽप्यस्माकमियती दुर्दशा ! एषाऽह खञ्जीकृता कापालिकैः । स्त्रीत्वमपि मदीयं नानुभूतं नृशंसैः । तैर्निवारिताऽपि सात्त्विकी पूजा मया न परित्यक्तेत्येवासीन्मद्दोषः । इदानीं भिक्षमाणा जीवितं यथाकथञ्चिद् धारयामि—काचित्प्रौढा-ऽवदत् प्रगाढं व्यथमाना ।

—पितृदोषादहं निर्दोषोऽपि दण्डितः । प्रभो ! कापालिकैः शरीरे मे श्वेतकुष्ट-रोग उत्पादितः । इदानीं सर्वजनोपेक्षातिरस्कारशूलं सोढं सोढं जीवामि । कश्चिद् द्वादशवर्षदेशीयो बालको विलपन्न्यवेदयत ।

प्रजाजनव्यथामश्रुतपूर्वामाकर्ण्य धर्मोदयनदेवः परमकारुणिको मर्माहतो जातः । पक्ष्मप्राकारमतीत्य कपोलमण्डलयोर्निपतन्तीः निरर्गलाश्रुवारिधारा उत्तरीयाञ्चलेन सारयित्वा क्रोधाग्निसंरक्तलोचनो विस्फुरिताधरो व्यायतललाटरोषरेखः कम्पित-चिबुको बन्धुरभ्रूलतो बालीनरेश आग्नेयदृष्ट्याऽभ्यर्णचरान् सामन्तान् सेवकांश्च दृष्ट्वा सतिरस्कारं प्रोवाच—

अतिसन्धानपरायणाः शठाः ! इदमेवास्ति प्रजायोगक्षेमवृत्तं यद्युष्मा-भिरनवरतं मया पृष्टैर्निवेदितम् ? धिङ्मां प्रजाविपत्तिकारणभूतम् ! यूयं सर्वेऽपि दण्ड्याः । राजधानीं प्रतिनिवृत्य समेषां भाग्यानि मया निर्णेतव्यानि । न भविष्यन्ति कापालिकाः सम्प्रति बालीद्वीपे । न भविष्यति तंत्राभिचारप्रयोगोऽस्म-द्राज्ये !

प्रजाजनान् परितोष्य प्रतिनिवृत्य च राजधानीं महामात्यं राजगुरुमार्यकुतुरानं सेनापतिं द्यूतञ्च समाहूय सविनयमपि प्रकटीभवदभ्यन्तररोषकालानलः प्रोवाच महीपतिः—सेनापते ! कापालिकानामत्याचारैर्नितरामुत्पीड्यते प्रजा ! ज्ञातं भवता न वा ?

-- कथमविदितं स्यात्स्वामिन् ? सर्वं जानामि ! नतमस्तकोऽवोचत्सेनापतिः ।

—किमुक्तं सर्वं जानामीति ? तथापि न कृतो वारणोपायः कोऽपि ? न वा निवेदितं मह्यं सम्राज्ञ्यै वा ? विस्फारितनेत्रोऽवदद् बालीनरेशः ।

....

—भोः किमिदम् ? मत्प्रश्नमप्रतिवचनीकृत्य कथं जोषमास्यते ? समाधान-माकाङ्क्षामि त्वत्तः ! मन्युघर्घरकण्ठः कण्ठीरवाकृतिर्जगर्ज भूपतिः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विनयसङ्कोचराजभक्तिकवचावृतो ब्यूतो न तत्याज मौनम्। राजगुरुः कुतुरानोऽन्वभवद्यन्नायमवसरः सङ्कोचस्य सत्यापलापस्य वा! हसन्नपि नृपो हन्ति। राजनीतिः खलु क्षुरस्य निशिता धारा! अल्पीयसाऽपि प्रमादेन संभवोऽङ्गच्छेदः। धर्मोदयनदेववर्मणो विनयाधिक्यमाभिजात्यं प्रजानुरागं महेन्द्रदत्तासक्तिञ्च सुष्ठु व्यजानाद् राजगुरुस्तथापि राजधर्ममेव सर्वोपरि प्रतिष्ठाप्य सादरं प्रोवाच।

—प्रजेश्वर! सेनापतेर्मौनं न धार्ष्ट्यपर्यायभूतं न वा तदपराद्धत्वम्। निषद्वरमग्ना चमूरुपोतकीव सीदति तस्य बुद्धिः। अतएवाहमेव भवन्तं प्रति प्रस्तुतोऽस्मि! सर्वमपि तथ्यमहं कथयिष्यामि।

—महामात्य! राजगुरो! राजप्रासादस्थितो भवान् सेनापतिपरिपाल्यान् प्रजावर्गान् अधिकृत्य किं वक्ष्यति? उदयनोऽवदत्।

—क्षोणीपते! यदत्रभवान् पिपृच्छिषति तदत्र बाल्यां को न जानाति? राजन्! भवद्गुणानुरागवशीकृतहृदया प्रजा भवन्तं परमेश्वरं मन्यमाना सर्वं विजानत्यपि रहस्यं नाख्यातवती। सेनापतिरपि तामेव परिपाटीं पालयति। परन्तु कृशानुमुखोऽयं ब्राह्मणः सत्यमुद्गिरति। यतोहि सत्यगोपनेन सम्प्रति सर्वनाशः सम्भाव्यते! राजगुरुः कुतुरानो निर्विशङ्कमुवाच। .... महामात्यवचनमाकर्ण्य सम्भावितानर्थपरम्परः स्तब्धोऽभून्नृपतिः। कुतुरानो गम्भीरगिरा प्रोवाच—राजन्! सम्राज्ञी महेन्द्रदत्तैव बालीविपत्तिमूलम्। स्वयमेव साऽनिशं तन्त्राभिचारसाधनां सम्पादयति। कापालिकान् सम्भावयति सर्वविधोपायैः। अनेकशो मया विनिवारिताऽपि, न वनिताजनानुकूलमिदं कर्मेति निषिद्धाऽपि, पातिव्रत्यविसंवादी प्रयत्नोऽयमिति समुपदिष्टाऽपि सम्राज्ञी स्व-निर्बन्धं न त्यक्तवती। सम्राज्ञीं प्रति भवदनुरागं गाढगाढं ज्ञात्वा न सेनापतिर्न चाहं न वाऽन्यः कोऽपि रहस्यमिदं निवेदयितुं शशाक। भवत्पृष्ट इदानीं प्रस्तौमि। श्रुत्वा भवन्त एव प्रमाणम्।

महामात्यवचनं श्रुत्वैव धर्मपरायणो धर्मोदयनदेवः समुद्गिरद्धूमबिम्ब इव ज्वालामुखभूधरो मुषित इव, खलीकृत इव, सर्वजनसमक्षं न्यक्कृत इव, क्षणं मूढ इवावतस्थे। नासीदविश्वासस्यावकाशः।

आसीच्च भूपालस्य मनसि—आः दैव! अनिन्द्यरूपलावण्यप्रतिमाऽपि निर्दोषप्रजाजनरक्तपिपासुर्यातुधानी भवितुं शक्नोति? हन्त सत्यमेव पाटीव्रततिः काकोदरपरिवृता? सत्यमेव पाटलवल्ली कण्टकिनी? सत्यमेव वृन्दारकधुनी हिंस्रनक्रमकरझषाकुला? आः सम्राज्ञि महेन्द्रदत्ते! गुणप्रियधर्मपत्नि! मकुटवंशवर्धननन्दिनि! यवराजलक्ष्मि! हृदयवल्लभे! त्वय्यपि सुचरितनन्दिन्यामेवं नाम नारकीयो विकारः?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राक्षसीभूताऽसि ? नासि त्वं राजगौरवाभिमानभूता राजमहिषी। श्मसानसुन्दरी जाताऽसि ! अतएव नार्हसि क्षणमपि त्वं सुरगृहोपमराजप्रासादवासम् । धर्मोदयनदेववर्माऽहम् ! सूर्यवंशीया अस्मत्पूर्वजाताः आर्यधर्ममर्यादापक्षधराः । मर्यादापुरुषोत्तमः श्रीरामस्तु प्रजानुरञ्जनाय निर्दोषामपि भगवतीं विदेहतनयां तत्याज । परन्तु त्वं खलु प्रजोत्सादनपीडननिरता राक्षसकर्मसंलग्ना निश्चप्रचमेव परिहार्या। इतः परं न भवसि मद्भार्या। तन्त्रसाधनावसक्ता गच्छ तंत्रभूमिं श्मसानकान्तारगिरिकन्दरामयीम् । नाहं राजमन्दिरं श्मसानीकर्तुं प्रभवामि !

ज्वलदनलपिण्डतामुपगतो बालीनरेशो दृढसंकल्पमिमं स्वान्ते निधायावरोधगृहं प्रविष्टः। ततश्च किं घटितमिति विस्तरेण ज्ञातुं प्रत्यक्षमवलोकयितुं वा न कोऽपि शशाक, परन्तु प्रातरेव सर्वैः श्रुतं यद् गर्भमरालसाऽपि सम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता धर्मोदयनदेववर्मणा प्रजाजनकभूतेन गृहान्निष्कासिता ।

प्रचण्डवात्योद्धूलिरिव प्रवृत्तिरियं समग्रेऽपि बालीद्वीपे परिव्याप्ता। धर्मध्वजभूतस्याश्चर्यकर्मणोऽवनिपालस्य प्रजापक्षधरत्वं विलोक्य राजगुरुसेनापतिसामन्तश्रेष्ठिवर्गाः श्रद्धातिशयप्रणता जाताः। सम्राज्ञ्याः परिभवेन समे हृच्छूलपरीता भयभीताः कापालिकास्तान्त्रिकाः घोरकर्माणो नरराक्षसा इदानीं प्रजावसथान् हित्वा गहनकान्तारेषु विलीनाः। सर्वत्रापि सात्त्विक्यो विष्णुशिवबुद्धदुर्गासमर्चनाः प्रारब्धाः। विद्वांसो धर्मरहस्यपारगाः पुरोहिताः सकृत्पुनः प्राभवन्। सर्वत्रापि संस्थापित आर्यधर्मः सनातनः बालीद्वीपे ।

(३)

अयमासीत् ख्रिस्तसंवत्सरः १००१ मितः। कुमार एरलङ्गोऽधुनाऽपि दशवर्षदेशीय एव प्रायेण स्वमातृष्वसृसंरक्षणे यवद्वीपे निवसतिस्म। यवद्वीपेश्वरो धर्मवंशस्तं भाविनं जामातरं यवसाम्राज्यपाटीप्रवर्तकञ्च मन्यमानो महतोपलालनेन वात्सल्येन च संवर्धयन्नासीत्। महेन्द्रदत्तावृत्तं निशम्य यवद्वीपराजकुलेऽपि सर्वे त्रपावमानविषादभारावनताः आसन्। परन्तु किं कुर्युः ? महेन्द्रदत्ताचरितं सर्वेऽपि जानन्तिस्म। धर्मोदयनदेवं मनस्विरत्नं विद्याविनयविक्रमालङ्कारभूतं को नु खल्वनुनयेत् ? यदि राजगुरौ कुतुराने विद्यमानेऽपि बालीभूपालेन समाचरितमिदं तर्हि नूनमिदं ललाटलिपिकल्पं वृत्तं नेदानीमन्यथाकर्तुं शक्यमिति मन्वानो धर्मवंशोऽपि नोद्वेगं ययौ।

चक्रारपंक्तिरिव व्यतीयाय हायनदिवसत्रियामादिपंक्तिः। सौधान्निष्कासिता मनस्विनी महेन्द्रदत्ता कान्तार एव विलक्षणलावण्यसम्पन्नां कन्यामेकामसूत। रत्नमञ्जलीति तस्या अभिधानं जनन्यायरोचत। भ्रातरि एरलङ्गे ख्रिस्तसंवत्सरे १०१० मिते यवद्वीपेश्वरपदाभिषिक्ते सति रत्नमञ्जल्यपि दशवर्षदेशीयाऽप्रतिमसुन्दरी राज-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कन्या जाता। प्रवर्धमाना चान्द्रमसी कलेव राजप्रासादस्नेहसम्भारसौख्यविरहिताऽपि वनकन्याऽसौ परां सुषमां लेभे। सम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता तद्भविष्यं प्रति नितरां चिन्तातुराऽऽसीत्। दयिततिरस्कारवशात् तन्त्राभिचारादिवामोपासनदोषवशाच्च तस्या न कोऽपि राजकुलोत्पन्नो युवकस्तामभेद्यपतितां काञ्चनप्रतिमां सगार्ध्योऽपि परिणेतुं सन्नद्धो भविष्यतीत्यासीत् सम्राज्ञीप्रत्ययः।

एवम्भूते किन्तु खलु करणीयम्? बुरवनाख्ये[1] गहनारण्ये स्वपर्णशालाऽभ्यन्तरे निषण्णा विषण्णा राज्ञी स्वातीतं स्मरंती निरर्गलाश्रुसन्ततिपरिक्लिन्नमुखी जाता। सा चिन्तयति स्म —हा दैव! कथमस्मिन् पतनगर्ते निपातिताऽहम्! कियता स्नेहेन ईशानवंशभास्करेण यवाधिपतिना मकुटवंशवर्धनेन पालिता? यवराजलक्ष्मीति गुणप्रियधर्मपत्नीति प्रख्याप्य मनसिजकल्पेन धर्मोदयनदेववर्मणा सह परिणीता! परन्तु तन्त्राभिरुचिर्मेऽस्मज्जीवनविषवल्लरीभूता। नाहमिदानीमिमामघोरसाधनां हातुं शक्नोमि। नृशंसा लेयाकाः (प्रेताः) मामेव भक्षयिष्यन्ति। सापत्न्यमुपगताः कापालिका दारुणाभिचारप्रयोगैर्मामेव विनाशयिष्यन्ति। धाः स्वर्गसुखं मयाऽत्महस्ताच्च्यावितम्। अपकृताः प्रजाः, अपकृतो दयितः, संशयितश्चात्मा। आत्मदोषात् कामधेनुवत्सतरीव कन्यापीयं सुरसिन्धुपरिपूता मया वनाहिण्डनव्यथार्ता कृता! न मे पापानामुपरतिः।

एवमादि चिन्तयन्ती राज्ञी चिरकालं यावदेकाकिनी मुक्तकण्ठं रुरोद।

सम्राज्ञीं महेन्द्रदत्तां स्वद्वितीयजीवितभूतां राजप्रासादान्निष्कास्य धर्मोदयनदेव आज्ञादेवीमुपयेमे[2]। अनेन सम्राज्ञीं प्रति तस्यात्यन्तिकी दुर्भावनाऽनभिरुचिश्च स्फारीभूते। शासनं कठोरं जातम्। कापालिका दृष्टमात्रा एव कारागारे निक्षिप्ताः। भूतप्रेतवेतालादिचर्चाऽपि नाश्रूयत। सर्वत्रापि द्वीपे सात्त्विकी समर्चना प्रारब्धा।

एरलंग इदानीमासीद्यवभूपतिः। शिण्डोकयुगादेव बालीद्वीपं यवसाम्राज्याङ्गभूतं समरविजितभूक्षेत्रञ्चासीत्। वस्तुतो राज्ञा मकुटवंशवर्धनेन पित्रा महेन्द्रदत्तेव बालीद्वीपाधीश्वरी नियुक्तासीत्। उदयनस्तु तद्वल्लभत्वेनैव प्रशास्तिस्म। परन्तु सामाजिकलाञ्छनाभिभूता सम्राज्ञी स्वाधिकारमपि प्रस्तोतुं न शशाक। धर्मवंशोऽपि

---

१. बालीद्वीपस्य ग्यान्यारप्रमण्डले (कमिश्नरी) कुतरीग्रामात् प्रायेण क्रोशद्वयान्तराले नैर्ऋत्यकोणे बुरवनाख्यो ग्रामोऽद्यापि तिष्ठति। शिलालेखप्रमाणैरिदमेव राङ्गडाभूतायाः महेन्द्रदत्तायाः समाधिस्थलम्।

२. ख्रिस्ताब्दात् ९८९ तः १०१० यावल्लिखितेषु शिलालेखेषु गुणप्रियधर्मपत्न्या सहैव उदयननामोल्लेखः सम्प्राप्यते। परन्तु १०११-१०२२ ख्रिस्ताब्दयोश्शिलालेखयोः केवलमुदयनोऽङ्कितो वर्तते। १०१६ मितवर्षस्य एकस्मिन् ताम्रपत्रलेखे सेम्बिरानस्थे रतु संग आज्ञादेवीत्यपि नामोट्टङ्कितं दृश्यते। एतत्सर्वं मयोपयोज्य ते यथारुचि प्रबन्धकल्पनाय।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बालीं जितवान् । सम्प्रति तज्जामाता एरलङ्ग एव परमार्थतो राजाऽऽसीत् उभयोरपि द्वीपयोः । काममुदयनस्तस्य पिता परन्तु राजनीतिदृष्ट्याऽसौ एरलंगवंशवदः सामन्त एवासीत् ।

तर्हि कथं न एरलंग एवाश्रयणीयः ? पुत्रोऽप्यसौ, सार्वभौमभूपतिरप्यसौ । स खलु सम्राज्ञीं, तनयां रत्नमञ्जलीञ्च भूयोऽप्यङ्गीकर्तुं बालीनरेशमुदयनदेवं सविनयं साधिकारञ्चापि विनेतुं शक्यति । मनस्येवं तर्कितवती वनवासिनी सम्राज्ञी ।

एवं संकल्प्य महेन्द्रदत्ताऽऽससाद यवराजधानीम् । परन्तु कौलीनं तस्यास्तदुपगमात्प्रागेव तत्र विराजमानमासीत् । मतराम-श्रीविजयसाम्राज्ययोः संघर्षः, धर्मवंशस्य सुमात्राविजयः तिरस्कृतस्य सुमात्राधिपतेः संग्रामविजयतुङ्गवर्मणोऽवसरमवाप्य यवद्वीपोपरि महदाक्रमणम्, धर्मवंशैश्वर्यविनाशो, राजधानीतः पलायनं, १००७ मितखिस्ताब्दे तस्य मृत्युश्च । ततश्च सुमात्रोपरि राजेन्द्रचोलाक्रमणम्, श्रीविजयसम्राज्ञ्या एरलङ्गशरणागतिः, सुमात्रायवद्वीपयोः सामञ्जस्यमेरलङ्गाभ्युदयश्चेति सर्वमपि घटनाचक्रमिदानीमपि नूतनमेव प्रतिभातिस्म । सिंहासनाधिरूढोऽपि युवको नरपतिः विद्रोहपरायणेभ्यो यवशासकेभ्यः केभ्यश्चिच्छङ्कित एवासीत् । प्रायेणाहोरात्रं सामन्तभटामात्यपरिवृतः साम्राज्यचिन्तयैव कालमनैषीत् ।

तथापि जन्मदात्रीं सम्राज्ञीं महेन्द्रदत्तां समागतामाकर्ण्य मातृदर्शनकातरो राजा द्रागेव वाससौधमुपाययौ । चिरकालानन्तरं समवाप्य दाम्पत्यप्रणयप्रथमोपहारभूतमुभयकुलरत्नं पुत्रं समुपस्तुतस्तनी कलङ्कत्रपाभारावनतमुखी राज्ञी चिरं विलपितवती । प्रशान्ते चोत्तप्तनयनघनवर्षणे पदयं प्रावाच तनयं यवद्वीपेश्वरम् ।

—वत्स ! प्रौढे वयसि त्वज्जनकप्रदत्तं यं कलङ्कभारं वहामि तं जानासि ?

—अम्ब ! श्रुतम्मया ।

—श्रुत्वाऽपि तूष्णीमास्थितोऽसि ? जननीक्लेशं नानुभवसि ? सहोदरीगौरवं न पश्यसि ?

—किं कारयितुमिच्छसि ?

—एरलंग ! समस्तद्वीपद्वीपान्तरप्रभुत्वमुपपन्नोऽसि । सर्वेऽपि द्वीपान्तराधिपतयस्त्वदाज्ञावशवर्तिनः । सर्वथा प्रभवसि त्वम् ! बालीद्वीपञ्च यौतकत्वेन मह्यं दत्तमासीत् पित्रा मकुटवंशवर्धनेन ।

—मातः ! न खल्ववगच्छामि तवाभिप्रायम् । स्फुटं भण ।

—यदि नाम तव पितृचरणो न रक्षति सम्राज्ञीबहुमानं तदा त्वत्सन्देशमात्रेण तत्प्रभुत्वाधिकारैस्तं नियन्तुमर्हसि, इतिमात्रमिच्छामि ।

—बालीनरेशं धर्मोदयनदेववर्माणं नियमयाम्यहम् ? परन्तु कस्मात् ? किम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पराद्धं तेन ? किं प्रजापालनेऽक्षमः ? किं यवभूपेऽननुरक्तो विद्रोहपरायणश्च ? किमात्मानमसौ यवसाम्राज्यान्मुक्तं घोषयति ?

—सम्राज्ञी महेन्द्रदत्तां यवभूपनन्दिनीं गुणप्रियधर्मपत्नीति प्रख्यातां सम्राडेरलङ्गजन्मदात्रीं गृहान्निष्कास्य योऽपराधस्तेनाचरितः स किं तद्दण्ड्यत्वाय नालम् ?—सञ्जातमत्सराऽमर्षपरायणा सम्राज्ञी प्रोवाच ।

—मातः ! प्रभवति पतिः पत्नीविषये । तत्र न मेऽधिकारः । पत्नी राजकन्योचिताचारमर्यादाशीलसमुदाचारमतिक्रान्तां प्रजाशातयित्रीं दण्डयन् बालीनरेशः कथम्मया दण्ड्यः ? मदधीनस्थसामन्तत्वेन स सर्वथा निरपराधः । धीरो वीरो गुणज्ञो विनयशौर्याभिजात्यमण्डितः प्रजावत्सलः राजनयपण्डितश्चासौ । स्वगुणैरसौ मे सामन्तशिरोमणिः । अथापि स मे जन्मदाता पिता । तदंशभूतोऽस्मि ।

—यया पुनः नवमासान् यावदुदरे संरक्षितोऽसि तैस्तैः संवर्धनोपायैः अकिञ्चित्करत्वात्किञ्चित्करत्वमानीतोऽसि तस्या न किमपि महत्त्वम् ?

—महत्त्वमस्ति मातः ! सात्त्विकं जीवनं यापयन्ती वाममार्गोपासनां परित्यज्य त्वं राजमातेव मत्सौधमन्दिरे स्थातुमर्हसि । त्वया सार्धं मम सोदर्या रत्नमङ्गल्या अपि कल्याणं भविष्यति । तदेव मद्वशे तिष्ठति !

—एतदुक्तं भवति यद् व्यर्थमेव तव यवसाम्राज्यभूपैश्वर्यम् !

—ममैश्वर्यं मत्पराक्रमो विमार्गप्रस्थितेषु विद्रोहिषु न पुनरनागसि पितरि !

— अयमेव तेऽन्तिमो निर्णयः ?

—कोऽत्र सन्देहः ?

— मदाज्ञामुल्लङ्घयसीत्यपि जानासि ? पितुरपि महीयसी माता भवति !

—न पुनरुत्पथा निरस्तनारीसमया कापालिकधर्मनिरता !

—एरलङ्ग ! राजमदगर्वितः प्रतिभासि ! जननीमवमत्य न सुखं स्थातुं शक्नोषि ! दृष्टं त्वया महेन्द्रदत्तावात्सल्यं न पुना रोषकालाग्निवर्षणम्.... क्रोधोद्धुरा सम्राज्ञी जगर्ज ।

— देवि ! पश्यामि कालाग्निवर्षणारम्भमपि । प्रकटितो मयाऽभिप्रायः । सम्प्रति यथाभिरुचितं कुरु । राजमातेव सौधे तिष्ठ यद्वा दण्डिता भार्येव वनकुटीरे जीवनं यापय ! उभयमपि त्वदधीनम् । सम्प्रति गमिष्याम्यहम् ।

एरलङ्गवचनं निशम्य स्वमनोऽभिलषितञ्चापूर्णं दृष्ट्वा जज्वाल स्वेनैव क्रोधाग्निना सम्राज्ञी । संकल्पसौधाश्चूर्णितास्तस्याः । गौरवाभिमानरक्षणकल्पनं मिथ्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जातम्। पुत्रं पितृपक्षधरं निरङ्कुशञ्चावलोक्य विवेकधैर्यरहिता राज्ञी प्रतिष्ठमानमेरलङ्गं श्रावयन्ती युगान्तनादम्बिनीव गर्जितवती—

'एरलङ्ग ! ममावमानोऽयं न ते भद्राय ! दुरभिमानभूधरशृङ्गादहं त्वामवतारयिष्यामि दैन्यभूपत्यकाम्। अहमिव त्वमपि मच्छरणमेष्यसि स्वयोगक्षेमार्थम्। सम्प्रति द्रक्ष्यसि त्वं मदीयं तंत्राभिचारप्रयोगकौशलम्। इतः परं न त्वं मम पुत्रो न चाहं ते माता !'

विषोच्छ्वासमुद्गिरन्ती कालसर्पिणीव राज्ञी बुरवनारण्यं प्रतिनिवृत्ता। एरलङ्गसाम्राज्योत्सादनमेवेदानीमासीत् तस्याः संकल्पः। एतदर्थं सा कापालिकैस्पार्धं नक्तन्दिवं घोरतपश्चर्यां सम्पादितवती। तंत्रग्रन्थामकृदालोचनैः सहजाकुलजामालाडाकिनीशाकिन्यादिवशीकरणैः विषूचिकायक्ष्मकुष्टधनुष्टङ्कारादिदारुणासाध्यरोगाकर्षणैः सम्प्रति सा नररक्तपिपासुर्यातुधान्येव सञ्जाता।

अस्ताचलाधिरूढो भगवान् अंशुमालीव चरमे वयसि वर्तमानो धर्मोदयनदेवोऽपि सम्प्रति श्लथः सञ्जातः। यद्यपि बाल्यां सर्वत्राप्यनामयमासीत् तथापि प्रजा निरन्तरमेव कम्पितवती भाविनम् उदयनाभावं परिकल्प्य।

(४)

एरलंगकृतो महेन्द्रदत्तावमानः द्रागेव फलितः। समग्रमपि यवद्वीपं विषूचिकामहामारीशीतलाप्रकोपादिव्याधिभिः पर्याकुलं जातम्। प्रजासु हाहाकारो व्याप्तः। सर्वेऽपि रोगशमनोपायाः सात्त्विका यज्ञा निरर्थका जाताः। प्रतिवर्षमेव लक्षमिताः प्रजाजनाः कालकवलिताः अभूवन्। सर्वत्रापि वार्तेयं प्रसृता यत् सर्वमिदं गुणप्रियधर्मपत्नीसमाचरितम्। प्रजामध्ये एरलंगच्छविरुत्तरोत्तरं ह्रासमुपयातुमारेभे।

तावदेव १०२१ मिते खिस्ताब्दे दैवदुर्विपाकवशाद् बालीद्वीपं निरुदयनं जातम्।[1] उदयनाकाङ्क्षानुसारं पितृभक्त एरलंगः पितुरन्त्येष्टिं यवद्वीपे पेनेङ्गुङ्गनपर्वतस्य पश्चिमस्थे शृङ्गे समाद्य तत्र च जलतुण्डनामकं तस्य भव्यं समाधिभवनं कारयामास।[2] उदयने दिवङ्गते एरलङ्गसहोदरेण धर्मवंशवर्धनमरकतपंकजस्थानोत्तुङ्गदेवनाम्ना बालीद्वीपस्य शासनसूत्रं गृहीतम्।

---

१. धर्मोदयनदेवस्यान्तिमः शिलालेखः १०२२ मितखिस्ताब्दीयः (चैत्रमासः) उपलभ्यते। ततश्च १०२५ मितखिस्ताब्दीयः (पौषमासः) लेखः श्रीधर्मवंशवर्धनमरकतपंकजस्थानोत्तुङ्गदेवस्योपलभ्यते। अतएव उदयनमृत्युतिथिः उभयोः लेखयोरन्तराले क्वचित्तिष्ठति इत्यनुमातुं शक्यते।

२. जलतुण्डप्रांगणे निखातं शिलानिर्मितं नवप्रकोष्ठयुक्तं सुवर्णरजतपत्राद्यवशेषसामग्रीयुक्तं विविधमंत्राक्षरोत्कीर्णं उदयनशवपिटकमिदानीं जकार्तासंग्रहालये सुरक्षितं वर्तते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्राज्ञी महेन्द्रदत्तेदानीं राङ्गडा[1] (=रण्डा विधवेत्यर्थः) सञ्जाता। समग्रेऽपि बालीद्वीपे प्रसृतेयं संज्ञा तस्याः कृते। क्रोशतो दारकान् अपि भीषयन्त्यो जनन्यः प्रायेण कथयामासुः—'अये! मौनं भज। अन्यथाऽऽगमिष्यति राङ्गडा!' राङ्गडानामश्रवणमात्रेणैव अर्भकाः शर्वरीकुमुदनेत्राः सञ्जाताः।

राङ्गडाभूताऽसौ विकरालतरा दारुणतरा च जाता। राजकन्या रत्नमङ्गत्री सम्प्रति मधुमासकुसुमवल्लरीव नवयौवनभारावनता प्रत्यङ्गं च विलक्षणलावण्यसंपन्ना समदृश्यत। तत्परिणयचिन्तयाऽपि राङ्गडा समधिकं नृशंसाऽभवत्। सा तु सर्वथा निर्दोषा रूपलावण्यसम्पन्ना तथापि मातृदोषवशात् न कोऽपि युवकस्तां परिणेतुमियेष। एरलंगस्य सा सहोदरी। कथमसौ भगिनीयोगक्षेमौ न समीहते? तन्नयनसङ्केतमात्रसम्प्रेरित एव कोऽपि युवा सामन्तस्तां परिणयेदिति राङ्गडाऽनिशं चिन्तितवती। समग्रानर्थमूलं यवभूपतिमेरलंगमेव मत्वा राङ्गडा यावच्छक्यमकाण्डताण्डवं प्रतिदिनं प्रतिसप्ताहं प्रतिमासं प्रतिवर्षञ्च समुपस्थापितवती एरलंगसाम्राज्यपरिधौ। राङ्गडाभिचारैः समुच्छिन्नं यवसाम्राज्यम्!

सन्तप्तः प्रजाभिरधिक्षिप्तः नरपतिः स्वपुरोहितं महातान्त्रिकं कुतुरानसहोदरं म्पूभराडं (भरटकं) शरणमुपययौ। आसीच्च तस्य चेतसि—नेदानीं सा मम जननी, न चाहं तस्याः पुत्रः। तद्विनाशं विना न प्रजाकल्याणम्। न साम्राज्ये सुखशान्तिस्थापनम्। इदानीं साऽमर्षरोषपापपरायणा नृशंसा राक्षसी सञ्जाताऽस्ति। अतएव तत्प्रशमः कर्तव्य एव।

भृशमनुरुद्धो यवसाम्राज्याधिपतिना म्पूभराडः म्पूबहुलाख्येन स्वपुत्रशिष्येणान्वितः राजकीयं जलपोतमधिरुह्य राङ्गडाविनाशार्थं यवद्वीपात् बालीद्वीपमाययौ। जेम्ब्रानाख्ये कबूपातने[2] पराञ्चानाम्नि ग्रामेऽसौ नदीमुखस्थिते तरणीतोऽवततार। तत्र च शर्वरीमतीत्य प्रातः शिवायतनं (पुरा पराञ्चाख्यं) निवेश्य महातान्त्रिकोऽसौ बुरवनारण्याभिमुखमग्रेससार यत्र निवसतिस्म राङ्गडाभूता सम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता।

राङ्गडाविरुद्धं म्पूभराडाभियानं कर्णपरम्परया निखिलेऽपि बालीद्वीपे वात्यावेगात्प्रसृतम्। सहस्रमिताः साहसिकाः म्पूभराडतंत्रशक्तिप्रत्ययवन्तस्तत्सहायाः सञ्जाताः। बहवस्तु राङ्गडाभराडतंत्रशक्तिपरीक्षणदिदृक्षव आयन्। सर्वत्रापि भराडचर्चा। कोऽपि राङ्गडापक्षधरः कोऽपि भराडपक्षधरश्च सञ्जातः।

ग्रामग्रामटिका अतिक्रामन् विशालजनसमूहानुगतो म्पूभराडः सर्वप्रथमं देवीनिलयभूतं बालीद्वीपसुमेरुं गृनुंग-अगुंगाख्यमुपययौ देवनमस्यासम्पादनार्थम्। तत्र

---

१. संस्कृतङ्कारः बाल्यां ङ्गकारस्तस्मात्—अंङ्क=अंगकः, वंशः=वंगशः, लंका=लंगका, रण्डा=रांगडा।

२. क-भूपति (बूपति) आन=कबूपतान। कमिश्नरीति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वकार्यसिद्ध्यर्थं त्रिदेवार्चानन्तरं समागतोऽसौ बुरवनारण्यं तत्रस्थवृद्धबिरिंगिन-तरुच्छायायाञ्च निवेशं चकार।

राङ्गडाऽपि स्वगुप्तचरमुखेभ्यः सर्वं श्रुतवती। भराडागमनाभिप्रायं सम्यग् विज्ञाय तंत्रशास्त्रज्ञानाभिमानं तस्य खलीकर्तुं स्वविद्याख्याति तंत्राभिचारप्रयोग-प्रागल्भ्यञ्च स्फारीकर्तुं सा स्वयमाजगाम म्पूभराडान्तिकम्। सम्प्रत्युभावपि तन्त्र-विद्याययुत्सू सम्मुखीनावास्ताम्। एकतो म्पूभराडः प्रजाजनपरिवृतोऽपरतश्च राङ्गडा कापालिकानुगता। समागतप्रायैव राङ्गडा साट्टहासं चुक्रोश-

पलायस्व मत्रात्मन्! रक्षात्मानम्। दन्दह्यतेऽयं पुराणबिरिंगिनतरुः!

इत्युक्त्वा यावदेवाग्नेयनयनाभ्यां राङ्गडा विलोकितवती तं पर्वताकारं न्यग्रोधजातीयं महातरुं तावदेवासौ पलालनिचय इवोर्ध्वज्वालाभिर्ज्वलितुमारेभे। सर्वेऽपि भराडसहायाः प्राणरक्षार्थमितस्ततः प्रणष्टाः। म्पूभराडोऽपि वृक्षपरिधि-मपवार्यात्मानं रक्षितवान्। राङ्गडातंत्रशक्तिमवलोक्य सर्वेऽपि विस्मिता आतङ्कि-ताश्च जाताः। कापालिका नर्तितुमारेभिरे।

परन्तु वज्राहतो भूधरशृङ्गकल्पो भराडो न विव्यथे न च मनाक् चचाल। क्षणानन्तरमेव सोऽपि स्वतन्त्रशक्तिचमत्कारं प्रदर्शयन् भस्मीभूतं बिरिंगिनवृक्षं पुनरपि पूर्ववदेव हरितं चकार। भराडपराक्रमं दृष्ट्वा हतप्रभा सञ्जाता तंत्रशास्त्रगर्विता राङ्गडा। उभावपि भटौ परस्परमानङ्कितौ। आसीच्च भराडचेतसि – प्रत्यक्षतन्त्र-बलेन नेयं खलीकर्तुं शक्यते। या पुनः स्वनेत्राग्निज्वालामात्रेण दग्धुं प्रभवति निश्च-प्रच सा मया न जेतुं शक्या। अस्याः खलु तंत्रविद्यारहस्यमविज्ञाय पराभवितुमिमां न शक्ष्यामि। अतएव षड्यंत्रमवलम्ब्य भेदबलेनैव विनाशोऽस्या मया कार्यः इति। एवं सञ्चिन्त्य मनसि प्रोवाच सस्मितं म्पूभराडः—

'अलमलं तन्त्रशक्तिप्रदर्शनैः। सम्राज्ञि! गुणप्रियप्रियपत्नि! नाहमागतो भवत्तंत्रशक्तिपरीक्षणाय। विश्वमिदं देवि! मन्त्रभूतोऽस्मि! विविध—शास्त्रज्ञानविचक्षणाय रूपयौवनविनयसम्पन्नाय स्वपुत्राय म्पूबहुलसंज्ञाय त्वत्कन्याया रत्नमङ्गल्याः पाणी याचे! अयमेव मेऽत्रागमनाभिप्रायः। रत्नमङ्गलीमहं स्नुषारूपेणाङ्गीकर्तुमिच्छामि।'

तनयाकल्याणकातरा वात्सल्यमेदुरा राङ्गडा भराडवचनमाकर्ण्य क्षणमात्रेणैव प्रह्वीभूता। चिरकालात्संरक्षिता दुहितृपरिणयलालसा तस्याः साम्प्रतं पूरयिष्यमाणा समलक्ष्यत। सा श्रद्धाविनयाभिभूता सती पुरस्सरीभूय भराडचरणकमलयोः स्वमस्त-कमर्पितवती। स्त्रीद्रव्यप्रदर्शनार्थं च क्षमामपि याचितवती।

न कोऽप्यविश्वासं चकार। सर्वेऽपि भराडव्यवहारं सहजं सरलं परमकारुणि-कञ्च मेनिरे। रत्नमङ्गल्याः सद्गुणान् रूपलावण्यसम्पत्तिञ्च विलोक्य तस्याः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौभाग्ये समेषामपि स्पृहाऽऽसीत्। अतएव षड्यन्त्रशङ्किता अपि केचन कापालिका नाधरपुटौ बन्धुरौ कृतवन्तः। रत्नमञ्जलीकल्याणमस्त्वित्येवासीत् समेषामाकांक्षा।

भवतु, परिणयोत्सवो निर्विघ्नं सम्पन्नः। म्पूबहुलो यद्यपि पितुरभिप्रायं सुष्ठु जानातिस्म तथापि देवाङ्गनोपमलावण्यवतीं मनोरमां मनोवृत्तानुसारिणीं सत्कुलोद्भवां राजकन्यामवाप्य पत्नीरूपेणासौ स्वसौभाग्यमेव मेने। विवाहानन्तरं सर्वेऽपि उदयनराजमन्दिरं समागताः कालयापनाय। सम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता यौतकत्वेन महतीं मणिमाणिक्यरत्नसमृद्धिमर्पितवती म्पूभराडाय। परकीयार्थभूतां कन्यां जामात्रे समर्प्य सर्वथा निर्वृता जाता धर्मोदयनदेवराजमहिषी।

परन्तु प्रातिभासिकलक्ष्यपूर्त्याऽनया क्व नाम म्पूभराडपरितोषः? पारमार्थिकलक्ष्यपूर्तिस्तु सम्प्रत्यप्यवशिष्टैवासीत्। अतएव तदर्थमनेन साधु शिक्षितः स्वपुत्रः म्पूबहुलनामा। राङ्गडातंत्रशक्तिरहस्यपरिज्ञानमेवासीत् भराडस्य प्रांततमं लक्ष्यम्। यतो हि स्वतंत्रविद्यासामर्थ्यमसौ एकेनैव विरिंगिनद्रुमदहनदृष्टान्तेन सम्यगनुभूतवान्।

अथ गच्छति काले पितृप्रेरितः म्पूबहुलः कन्दर्पकेलिवशीकृतां स्वहृदयाधीश्वरीं परमविश्वस्तां रत्नमञ्जलीं वार्ताविनोदैरुपलालयन् यथाकथञ्चित् तन्मुखादेव तन्मातुस्तन्त्रसामर्थ्यरहस्यं ज्ञातवान्। वस्तुतः सम्राज्ञीतंत्रशक्तिमूलभूत आसीत् कश्चिद्धस्तलिखितोऽप्रचलितो महादारुणो दुर्धर्षग्रन्थो यः खलु प्रतिलोमविधिना पठनीय आसीत्। तदुपदिष्टास्तंत्रप्रयोगा मारणमोहनोच्चाटनादिषु शक्ताः सर्वथा दुर्वारा आसन्। तेषां प्रयोगाणां प्रतिसंहारोऽपि तत्रैव निर्दिष्ट आसीत्।

रत्नमञ्जलीमुखादिदं रहस्यं विज्ञाय श्वश्रूप्रणमनव्याजेन बुरवनारण्यं गत्वा शर्वरीं यापयन्नवसरं समवाप्य म्पूबहुलस्तं राङ्गडाजीवनभूतं तंत्रग्रन्थं मुषितवान् निभृतनिभृतं च तं ग्रन्थमाद्यन्त लिखित्वा पुनरपि यथास्थानं निदधे।

सम्प्रति म्पूभराडस्तं दारुणतन्त्रग्रन्थं सावधानमनसाऽधिजगाम। तन्त्रोक्तपुरश्चरणान्यपि यथायथं सम्पादयामास। स्वप्रयोगसाफल्यमवलोक्य सम्प्रत्यसौ राङ्गडाविनाशक्षममात्मानं मेने। सर्वमेतत् निभृतनिभृतं सम्पन्नम्। नाशशङ्केऽल्पमपि रत्नमञ्जली न चापि सम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता।

परन्तु ज्ञातशम्बरमायः प्रद्युम्न इव यदा बुरवनारण्यमागत्य म्पूभराडः सतिरस्कारवचनं सावमाननं सराक्षसीत्वप्रख्यापनं साधिक्षेपञ्च राङ्गडां युद्धार्थमाकारितवान् कापालिकांश्चाप्याजुहाव तदाऽसौ सर्वं षड्यंत्रमनुभूतवती, तथापि पुत्रीकल्याणसन्तृप्तासाविदानीं स्वासन्नमृत्युमपि तृणाय मेने।

प्रारब्धमुभयोस्तंत्रशक्तिपरीक्षणम्, परन्तु विज्ञातराङ्गडारहस्यो भराड इदानीमविचल एवावतस्थे। सर्वेऽपि कापालिका भराडोग्रवीर्यं दृष्ट्वा पलायिताः। राङ्गडाऽपि स्वेनैव तंत्रप्रयोगेण भराडप्रयुक्तेनोच्छिन्नमूला पुराणव्रततीव निस्संज्ञा सती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूमौ पपात । सकृन्मृतां राङ्गडाभूतां सम्राज्ञीं स्वदुरितपश्चात्तापार्थं म्यूभराडः पुनर्जीवयामासेत्यपि श्रूयते । यदा सम्राज्ञी सत्यमेव निर्दोषयववासिप्रजाजनसंहारार्थमात्मानं धिक्कृतवती, पवित्रेण मनसा च पश्चात्तापं कृतवती तदा म्यूभराडस्तां धर्ममुपदिश्य, निष्पापां विधाय, रत्नमङ्गलीञ्च परमार्थतः स्वस्नुषामुद्घोष्य पुनर्जीवन तन्त्रप्रयोगेण ।

इयं घटना १०२२-१०४९ मितखिस्ताब्दयोर्मध्ये कदाचिद् घटिता[1] । एवं हि यवराजलक्ष्मीति गुणप्रियधर्मपत्नीति शिलालेखेषु प्रख्याताया यवद्वीपेश्वरमकुटवंशवर्धननन्दिन्याः सम्राडेरलंगजनन्या धर्मोदयनदेववर्मप्राणेश्वर्याः सम्राज्ञ्या महेन्द्रदत्तायाः पञ्चविंशतिवर्षाणि यावदुपभुक्तपापकलङ्कोपेक्षावमानभरायाः करुणोऽन्तो जातः । मरणानन्तरं सा भराडसंरक्षणे श्रौतेन विधिना बुरवनारण्य एव स्वपुत्रेण चितामधिरोप्य सबहुमानं दग्धा । कतिपयवर्षानन्तरञ्च पार्श्ववर्तिनि कुतरीग्रामे लघुपर्वतशृंगोपरि महिषासुरमर्दिनीविग्रहवती सा देवालये चापि संस्थापिता यवबालीद्वीपपरम्परानुसारम् ।

वस्तुतो महातान्त्रि भराडमाध्यमेन सम्राड् एरलंग एवात्मविध्वंसहेतुं प्रतिपक्षभयङ्करीमुग्रवीर्यां जननीं घातितवान् इति नाविज्ञातं प्रेक्षावताम् । कलकत्तासंग्रहालये सुरक्षिता एरलंगप्रशस्तिरपि संकेतयति यत्तेन दाक्षिणात्या काचित्सम्राज्ञी राक्षसीवोग्रवीर्या समुत्सादिता[2] । किमसौ सम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता एवेति निर्णयन्तु ऐतिह्यविदः । प्रशस्त्यनुसार घटनेयं १०३२ मितखिस्ताब्दे घटिता । यद्यसौ राक्षसी राङ्गडैव तदा सम्राज्ञ्या मृत्युतिथिरपि सर्वथा स्पष्टा ।

(५)

राङ्गडाऽद्यापि जीवति बालीद्वीपे । सेदान्तीं प्रेताधीश्वरीत्वेन सर्वत्रापि मन्दिरेषु स्थापिता, तत्राभिचारपरायणैः बालियानसंज्ञकैः (ओझा इति हिन्दीभाषायां) प्रेतसमर्चकैः शक्तिकृपाकरुणाकटाक्षाद्यवाप्त्यर्थं नितरां समर्च्यते ।

---

१. १०२२ मितखिस्ताब्द उदयनमृत्युतिथिः । तदनन्तरमेव सम्राज्ञ्या राङ्गडेति ख्यातिः । ततश्च १०४९ तः १०७७ खिस्ताब्दं यावत् एरलंगसहोदरस्य (तृतीयस्य) शिलालेखा बाल्यां प्राप्यन्ते आसंगसितात् क्लुंगकुङ्गं यावद् । आनकवुंशुनाम्नोऽस्य कुमारस्य विवरणं शिलालेखेषु एवमुपलभ्यते-देव्याः कनिष्ठपुत्रो या बुरवने निखाता, देवस्य च पुत्रः यो बजुवेके विश्राम्यति' लेखोक्तौ देवीदेवौ निश्चितमेव महेन्द्रदत्तोदयनौ । इदमपि ज्ञायते यत् १०४९ वर्षात्प्रागेव उभावपि दिवङ्गतौ । तस्मान्मयेदं सम्भाव्यते ।

२. अभवदपि भुवि स्त्री राक्षसीवोग्रवीर्या—एरलंगप्रशस्तिः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नृत्यगीतप्रियं निखिलमेव दक्षिणपूर्वेशियाभूखण्डं गन्धर्वकिन्नरमण्डलमिव प्रतीयते। तत्रापि हिन्दुधर्मदर्शनमंत्रतंत्रसाधनाभूमिः बालीवसुन्धरा द्वीपान्तराण्यतिशेते। अत्र प्रायेण विविधावसरसम्बन्धवन्तो विंशतिमिता नृत्यभेदाः प्रचलिता लेगांग-संवयांग-केचॉक-बरीस-केबियार-जलोनरंगादयः। कश्चिदत्रातिकोमलः कोमलाङ्गीभिः कन्याभिः प्रस्तूयमानः लास्यभेदः (लेगांग इति) कश्चिद् युद्धाह्वानात्मको नृत्यभेदः (बरीस इति) कश्चित् केवलं मन्दिर-पुरोहिताभिः पलितचिकुराभिरवनतकपोलमण्डलाभिः प्रस्तूयमानो दैवतावेशमयो नृत्यभेदः (संघयाँग इति) कश्चिच्चाधुनिकपर्यटकाभिरुच्यनुकूलतां दधत् कैबरेडांसवत् (केबियार इति)।

तत्रापि जलोनरंगनृत्यं प्रेतावेशपरं राङ्गडाचरितश्रितं निखिलेऽपि द्वीपे प्रख्याततमम्। यथोत्तरभारते दुर्घटनातङ्कविरोधवैराशङ्कावशात् प्रायेण महाभारतकथापाठो जगनिककृताल्हखण्डगायनं वा वृद्धैर्नायोज्यते तथैव बालीद्वीपे जलोनरंगायोजनं सर्वथा निषिद्धम्। आयोजिते सति प्रेताधीश्वरी राङ्गडाऽभिनेतृविग्रहे प्रत्यक्षमवतीर्य महाविनाशं करोतीति साधु पुष्टं बहुभिः दृष्टान्तैः।

जलोनरंगनृत्ये राङ्गडाभिनयं कोऽपि पुरुष एव निर्वहति। अभिनयात् प्रागेवासौ राङ्गडावेशभारसमर्थास्तान्त्रिकीः क्रियाः पमङ्कूपदिष्टान् श्मशानोपचारांश्चानेकान् सम्पादयति। तथापि राङ्गडामुखाकृतिं (मुखौटा इति भाषायां) वेषभूषादिकञ्च सन्धारयन्नेवासौ प्रायेण अप्रकृतिस्थो जायते। विश्वस्तसूत्रैरिदमपि ज्ञातं यत् पुरा नैके जना राङ्गडाभिनयवन्तो नृत्यान्त एव निधनङ्गता उन्मत्तीभूय वाद्यापि ग्रामाञ्चलेष्वाहिण्डन्ते। एवं हि कृतप्रयत्नोऽपि जनो रांगडाऽऽवेशं सोढुं प्रायेण शक्तो न जायते।

जलोनरंगनृत्ये स्वतंत्रशक्त्या राङ्गडा यान् प्रतिपक्षिभूतान् जनान् धातयति तेऽपि न केवलं मृत्युमभिनयन्ति, वस्तुतस्तेऽर्धमृताः सम्मूर्च्छिता वा जायन्ते। नृत्यान्ते ते सर्वेऽपि मृतका इव श्मशानभूमिं नीयन्ते। महान् जनसम्मर्दस्तत्र गच्छति, श्मशानभूमौ प्रेतसमर्चकः पमङ्कुः विविधान् उपचारान् सम्पाद्य तान् प्रकृतिस्थान् विदधाति। तस्मिन्नेवावसरे विविधजनपदेभ्यः समागतानां तान्त्रिकैन्द्रजालिकादीनां शक्तिप्रदर्शनमपि आयोज्यते। उभयपक्षतः प्रक्षिप्तानि मंत्राक्षराणि उल्कीभूय मध्येगगनं परस्परं संघट्ट्य महाप्रकाशमुत्पादयन्ति। आसूर्योदयमिदं शक्तिप्रदर्शनं प्रवर्तते। पश्चाच्चैव ग्रामवासिनः शृण्वन्ति यदमुकस्य पक्षस्यामुको जनः पञ्चत्वं गतः। पञ्चत्वगमनमेव कस्यचित् पक्षस्य पराजयचिह्नम्।

एवंहि बालीद्वीपस्थं प्रेततन्त्रमत्यन्तनृशंसमद्यापि भृशं जीवति। अद्यापि ग्रामे-ग्रामे बालियानाः (प्रेतसमर्चकाः) प्रतिवसन्ति। निष्कुटे-निष्कुटे लेयाकाः (प्रेताः) क्रीडन्ति। कतिपयदिवसपूर्ववर्तिन्य एव नैका विलक्षणघटना मयाऽपि नाम श्रुता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मित्राणां मुखेभ्यः । दामोदरस्य वृद्धपितामहो विगतसत्रे केनापि वाहनवता प्रेतेन गृहं यावत् प्रापितः । अवतरत्येव यानात्तस्मिन्नसावलक्षितः । वाहनघर्घररवोऽपि नाश्रूयत । मन्मित्रस्य पाअस्तस्य कनिष्ठा कन्या विद्यालयादायान्ती कयाचिद् वृद्धया प्रलोभिता मद्गमनाय । गृहमासाद्यैव सा ज्वरार्ता विविधान् जल्पान् प्रस्तुतवती पश्चाच्चोपपचारैर्बालियानस्य स्वस्था जाता ।

वैदेशिकाः पर्यटकाः प्रायेणार्थलोभमुत्पाद्य जलोनरंगनृत्यं द्रष्टुं प्रयतन्ते । परन्तु मृत्युभयभीता बालीवासिनः कथमपि तन्न सम्पादयन्ति । केवलमुबुदनगरे ग्यान्यारप्रमण्डले संवत्सरे सकृदायोज्यते जलोनरंगनृत्यम् । तत्र राङ्गडाशिषा न जायते काचिद् दुर्घटनेति मया श्रुतम् । तस्मादहमपि व्यग्रमनस्कस्तमवसरं प्रतीक्षे । बालीद्वीपे प्रतिनगरं प्रत्यापणं राङ्गडामुखाकृतिः क्रेतुं शक्यते । नृशंसराक्षसीव बहिरागतोभयदंष्ट्रा निर्यन्नेत्रगोलका लम्बमानपलितकेशा ऊर्ध्वकर्णोन्नतघोणा विकरालचिबुका भयावहमुखभावभंगिश्च वृद्धा राङ्गडा दर्शनमात्रेणैव भयमुत्पादयति ।

स्वरूपद्वयं राङ्गडाया मानवीरूपं देवीरूपञ्च । मानवीरूपेणासौ पूर्वोक्तस्वरूपिणी तंत्रमन्त्रशक्तिपरीता सम्राज्ञी महेन्द्रदत्ताऽस्ति । देवीरूपेण पुनः सा तमोगुणाभिभूता भटारकालजनयित्री प्रलयंकरशङ्करप्रिया दुर्गा महिषासुरमर्दिनी । तस्मादेव बालीद्वीपे सा क्वचित् दिव्यविग्रहवती क्वचिच्च मर्त्यविग्रहवती सम्पूज्यते तत्तद्देवालये । वस्तुतो बालीवासिनां कृते महिषमर्दिनीराङ्गडयोः पारमार्थिकमैक्यम् ।

इण्डोनेशियाशासनतंत्रम् उदयनविश्वविद्यालयमिव महेन्द्रदत्ताविश्वविद्यालयमपि[1] (यूनिवर्सितास् महेन्द्रदत्ता) संस्थाप्य सम्राज्ञ्यै प्रभूतबहुमानं प्रयच्छतीति मोमुद्यते चेतः ।

---

१. यद्यपि महेन्द्रदत्ताविश्वविद्यालयो न वर्तते राजकीयस्तथापि शासनानुमोदनेनैव स्थापितः । अन्येऽपि महासरस्वती-वर्मदेव—न्गुराहराइ-मार्कण्डेयाख्या विश्वविद्यालया न राजकीयाः । राजकीयस्तूदयनविश्वविद्यालय एव ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभिराज-साहित्य (प्रकाशित)

• रचना (संस्कृत)	प्रकाशनवर्ष	मूल्य
१. नाट्यपञ्चगव्यम् (एकांकि-संग्रहः) उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत	१९७१	१५/-
२. अकिञ्चनकाञ्चनम् (एकांकि) उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत	१९७४	१५/-
३. आर्यान्योक्तिशतकम् (खण्डकाव्यम्) उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत	१९७५	१५/-
४. नवाष्टकमालिका (खण्डकाव्यम्) उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत	१९७६	१५/-
५. नाट्यपञ्चामृतम् (एकांकि-संग्रहः)	१९७७	२०.-
६. वाग्वधूटी (गीत-संग्रहः) उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत	१९७८	२२/-
७. पराम्बाशतकम् (खण्डकाव्यम्)	१९८१	१०/-
८. चतुष्पथीयम् (एकांकिसंग्रहः) उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत	१९८३	१५/-
९. प्रमद्वरा (चतुरंकिका नाटिका) उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत	१९८.	२०/-
१०. मृद्वीका (नवगीत-संग्रहः)	१९८५	१५/-
११. इक्षुगन्धा (कथा-संग्रहः) साहित्यअकादमी द्वारा पुरस्कृत	१९८६	१५/-
१२. रूपरुद्रीयम् (एकांकि-संग्रहः)	१९८६	२५/-
१३. शताब्दीकाव्यम् (खण्डकाव्यम्)	१९८७	१५/-
१४. अभिराजसप्तशती (कोशकाव्यम्) उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत	१९८७	२५/-
१५. जानकीजीवनम् (महाकाव्यम्)	१९८८	१५०/-
१६. श्रुतिम्भरा (नवगीत-संग्रहः)	१९८९	२०/-
१७. राङ्गडा (कथा-संग्रहः)	१९९२	५०/-
१८. पञ्चकुल्या (कोशकाव्यम्)	१९९२	२५/-
१९. विद्योत्तमानाटिका	१९९२	१५०/-
२०. वामनावतरणम् (महाकाव्यम्)	यंत्रस्थम्	१००/-
२१. रूपविंशतिका (एकांकि-संग्रहः)	यंत्रस्था	५०/-

• अप्रकाशित कृतियाँ

१. चौरशतकम् (खण्डकाव्यम्)

२. अभिनवपञ्चतन्त्रम् (कथासंग्रहः)

पारिजातम् (कानपुर) में धारावाही प्रकाशित ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी.....
पु०सं०.....1383
भारती पुस्तकालय

३. मृगाङ्कदूतम् (खण्डकाव्य)
संस्कृतप्रतिभा (नई दिल्ली) में प्रकाशित।
४. बालीविलासम् (खण्डकाव्यम्)
संस्कृतप्रतिभा (नई दिल्ली) में प्रकाशित।
५. धारामाण्डवीयम् (खण्डकाव्य)
दूर्वा (भोपाल) में प्रकाशित।
६. हिमाचलशतकम् (दिव्यज्योति में प्रकाशित काव्य)
७. भारतीपरिदेवनम् (राजीवश्रद्धाञ्जलिकाव्य, अर्वा० दिल्ली)
८. कालिदासमहोत्सवशतकम् (अर्वाचीनसंस्कृतम् में प्रकाशित)
९. दण्डकदण्डकम् (दूर्वा में प्रकाशित)
१०. प्रबोधपञ्चाशिका (दूर्वा में प्रकाशित)
११. बालीद्वीपे भारतीया संस्कृतिः (गवेषणाग्रथः)
संस्कृतश्रीः (श्रीरंगम) में धारावाही प्रकाशित।
१२. कस्मै देवाय हविषा विधेम (प्रशस्तिसंग्रहः)
विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।
१३. छन्दोऽभिराजीयम् (अभिनवच्छन्दश्शास्त्रम्)
१४. अभिराजशतकम् (खण्डकाव्यम्)
१५. काव्यतरङ्गिणी (संस्कृतसाहित्येतिहासः) २१ अध्यायों में संस्कृतवाङ्मय का पद्यबद्ध विवरण।
१६. मधुपर्णी (नवगीतसंग्रहः)
१७. कौमारम् (शिशुगीतसंग्रहः)
१८. नाट्यनवग्रहम् (एकांकिसंकलनम्)

● **प्रकाशित हिन्दी कृतियाँ**

१. वेदना (खण्डकाव्य)
२. पनघट (खण्डकाव्य)
३. मुक्तिदूत (खण्डकाव्य, महात्मा गाँधी पर आधारित)
हाईस्कूल कक्षा के पाठ्यक्रम में निर्धारित (उ० प्र०)
४. पूर्णकाम (खण्डकाव्य, भरत पर आधारित)
५. गृहत्याग (खण्डकाव्य, बुद्ध पर आधारित)
६. अस्थिकलश (खण्डकाव्य, इन्दिरा पर आधारित)
७. मुक्तधारा (काव्यसंकलन)
८. दो पात नीबूः तीन पात अमोंला (६० कविताएं)
९. सपनों में डूब गया मन ! (५५ कविताएँ)
१०. पलकों के बन्द द्वार ! (६५ कविताएँ)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.